विपाशा

हिमाचल प्रदेश के भाषा एवं संस्कृति विभाग की द्वैमासिक पत्रिका

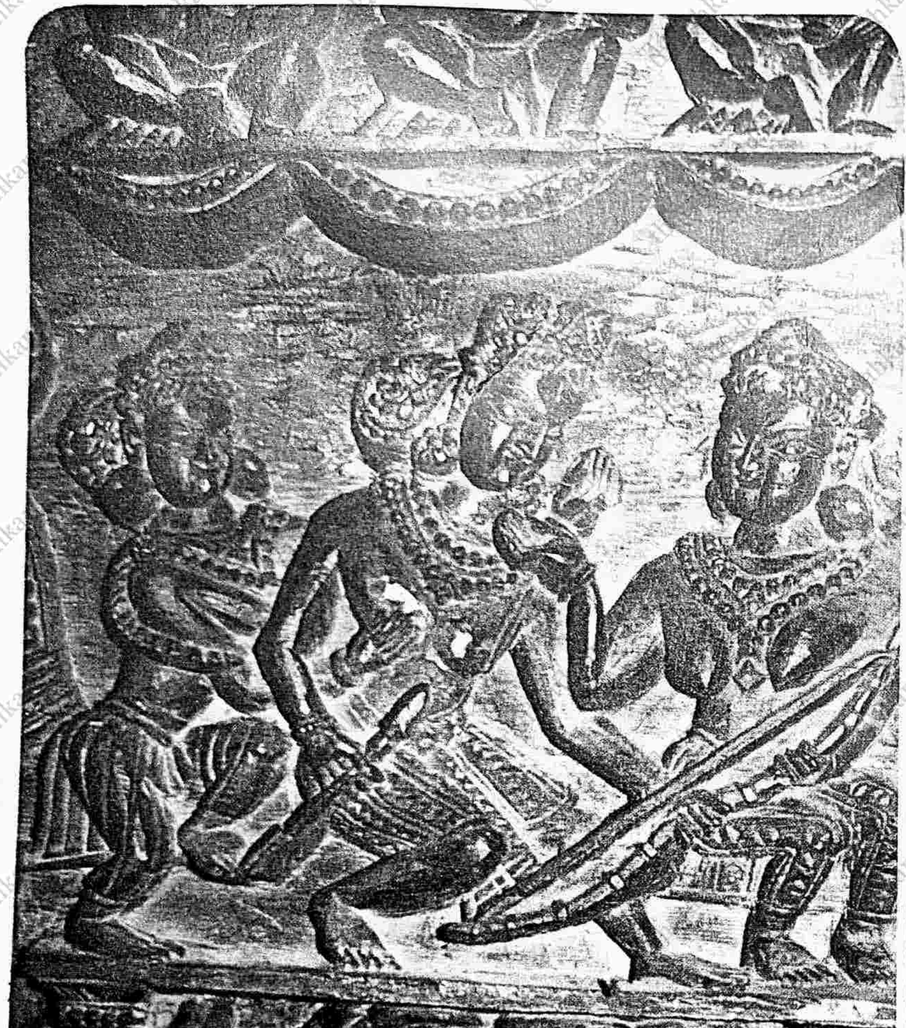

मुख पृष्ठ : महेश्वर मंदिर, सुंगरा (किन्नौर) विवरण पृष्ठ 96 पर

रेखांकन : हिम कुमार चटर्जी

ऊपर का चित्र : मृकुला देवी मंदिर, उदयपुर (लाहौल) के गर्भगृह में सज्जित काष्ठकृति : रामसीता व हनुमान (18 वीं शती)

tharahkardu.in

विपाशा

साहित्य, संस्कृति एवं कला की द्वैमासिकी
वर्ष-6, अंक-34, सितम्बर-अक्तूबर, 1990

मुख्य संपादक
सी०आर०बी०ललित
निदेशक, भाषा एवं संस्कृति, हि० प्र०

संपादक
तुलसी रमण

संपर्क : संपादक-विपाशा, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हि० प्र०
त्रिशूल, शिमला-171003 दूरभाष : 3669, 6846, 4614

वार्षिक शुल्क : दस रुपये, एक प्रति : दो रुपये

क्रम

3 पाठकीय
5 संपादकीय

लेख

7 भारतीय साहित्य की परम्परा : **प्रभाकर श्रोत्रिय**

देशांतर

21 गुथेरा (अफ्रीकी उपन्यास अंश) : **गुग्गी वा थियोंगो**

कहानी

31 इन्द्रधनुष स्याह : **सुशील कुमार फुल्ल**
35 मेहमान : **तारा नेगी**

कविता

40 तीन कविताएँ : **गंगाप्रसाद विमल**
44 सूरदास : तीन कविताएँ : **आनन्द**
48 चार कविताएँ : **चंपा वैद**

समीक्षा

51 हिमाचल का हिन्दी उपन्यास : **डॉ० हेमराज कौशिक**
71 कविता के दो छोर : **सतीश धर**

याद

74 गुलिस्ताने साथी की एक यादगार शाम : **प्रभात कुमार**

लोक संस्कृति

80 कुल्लू क्षेत्र की लोक नाट्य परम्परा : **मौलूराम ठाकुर**

आयोजन

90 मंडी में कहानी संवाद : **नरेश पंडित**
92 संस्कृत दिवस समारोह : **वासुदेव शर्मा**
93 'शेषकथा' पर विचार : **ओम् निश्चल**
94 किन्नौर के मंदिर : **हिमकुमार चटर्जी**
96 आवरण के छाया चित्र

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, इनमें संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं।

पाठकीय

डॉ० सत्येंद्र शर्मा, सतना

लगभग एक सप्ताह पूर्व विपाशा के दो अंक मिले। 'विपाशा' अप्रतिहत प्रवहमान है, अपने रंगो-खुश्बू को लिए, परिचित अंदाज में। बीते दशक में बड़ी पत्रिकाओं ने अपना मूल चरित्र राजनीतिपरक बना लिया; राजनीति में भी व्यक्ति प्रशस्ति या निंदा रस ही सर्वोपरि हो गया। किसी देश की बड़ी पत्रिकाएं/समाचारपत्र सिर्फ घटनाओं के ब्यौरे न हों, जनचेतना को संस्कारित और विकसित करने के माध्यम, संस्कृति, परंपरा और सामाजिक इतिहास के पुनर्लेखन भी सक्रिय हों, ऐसी अपेक्षा अनिवार्यतः होती है। किंतु जाने क्या हुआ भाई; सब 'उल्टा-पुल्टा' हो गया। ऐसी पत्रिकाओं से पहले दृष्टियुक्त संपादकों की विदाई और कागज संकट के कारण पत्रिकाओं का अखबारनुमा कलेवर, साप्ताहिक से पखवारीय और फिर मासिक और फिर···। सरकारी पत्रिकाओं पर शिविरबद्धता के आरोप लगते रहे हैं, जो पूरी तरह निराधार भी नहीं हैं—ऐसे माहौल में कहीं 'वीणा' (इंदौर) स्पंदित हो, 'हंस' (दिल्ली) नीर-क्षीर-विवेक का प्रयत्न साधे और 'विपाशा' भाषाई-सांस्कृतिक उन्मेष के लिए संकल्पित, सतत गतिमान हो—तो आशा बंधती है।

प्रवीणचंद, चंडीगढ़

चंबा रूमाल सचसुच एक पारदर्शी की तरह है जिन लोगों ने इसे देखा है वे इसकी कलात्मक महत्ता को समझ सकते हैं। विपाशा के मुखपृष्ठ पर इसकी प्रस्तुति सर्वथा उचित है, लेकिन प्रकाशन इतना स्पष्ट नहीं हो पाया कि इसकी बारीकियां उभर सकें जबकि बाकी चित्र अधिक अच्छे छपे हैं, संभवतः पारदर्शी की कमी हो। आवरण में चित्र आप लोग कलात्मक महत्त्व के देते हैं यह अच्छी बात है।

इस अंक में जेम्स जॉयस की कहानी भी पढ़ने को मिली। ऐसे रचनाकारों की कृतियों को हिन्दी में प्रस्तुत करना भाषा-साहित्य की समृद्धि की दिशा में उपयोगी है। श्री केदारनाथसिंह से बातचीत ने इस अंक को संग्रहणीय बना दिया है। यह साक्षात्कार इतना अच्छा बन पड़ा है कि इसमें जहां प्रसिद्ध कवि की रचनाधर्मिता पर प्रकाश पड़ा है, वहीं समकालीन कविता को लेकर ऐसी सूक्ष्म स्तर की बातें भी सामने आयी हैं जो कविता को समझने और इसके अच्छे-बुरे की पहचान करने में भी सहायक साबित होती हैं।

सुरेश कुमार, शिमला, हि० प्र०

लोकनाट्य शृंखला में इस बार कांगड़ा क्षेत्र के लोकनाट्यों पर डॉ० गौतम व्यथित का लेख अच्छा बन पड़ा है। इसमें एक बात यह भी सामने आती है कि अकेले हिमाचल प्रदेश में ही लोकनाट्यों में काफी तालमेल हुआ है। मसलन 'ऐहंचलियां' को डॉ० व्यथित ने सर्वहारा की नाट्य मंडली कहा है जबकि हिमाचल के शिमला, सिरमौर, मंडी आदि क्षेत्रों में 'ऐहंचलियां' शिवरात्रि के अवसर पर शिवस्तुति के रूप में गाई जाती हैं। वहां ये लोकनाट्य का रूप नहीं रखतीं बल्कि पर्व गीत की तरह गाई जाती हैं। इसी तरह 'नृत्य गीत/मुजरा' भी लोकनाट्य नहीं है बल्कि यह मनोरंजन का गीत-नृत्य ही है। इसे 'मुजरा' कहना 'विक्टोरियन थियेटर' का नहीं बल्कि मुगल दरबार (मनोरंजन के संदर्भ में) से लिया जा सकता है। इस तरह यह मालूम होता है कि लोक-नृत्य और नाट्य में भेद करना भी बहुत बार कठिन हो जाता है। विशेष रूप से ऐसी स्थिति में जब लोकनाट्य के दृश्यों के बीच दर्शकों को बांधे रखने के लिए नृत्य व गीत चल रहा हो। लेकिन शोध और विश्लेषण के तहत यह भेद करना ही होगा वर्ना विधाएं अपना पृथक् स्वरूप अख्तियार नहीं कर पाएंगी।

महेंद्रनाथ, देहरादून, उ० प्र०

इस अंक के 'पाहुन' स्तंभ में मोहन राकेश की चर्चित कहानी 'मिस पाल' देकर आपने पाठकों का ध्यान उनकी उत्कृष्ट रचनाओं की ओर आकृष्ट किया है। वैसे तो उनके कहानीकार से हिन्दी जगत् परिचित ही है, लेकिन हिमाचल के संदर्भ में ही देखें तो मोहन राकेश की 'मंदी' जैसी कुछ और कहानियां भी हिमाचल की पृष्ठभूमि में लिखी गई कहानियां हैं। उनकी डायरी में डलहौजी, शिमला और कुल्लू-मनाली का बार-बार जिक्र आता है। 'मिस पाल' रचनाकार के कृतित्व का प्रतिनिधित्व करती है। इसमें दो राय नहीं।

इस अंक की कविताएं व कहानियां अधिक आश्वस्त नहीं करतीं। दिविक रमेश और कविता सूद की कविताएं तो सतही ही हैं।

डॉ० के० सी० पराशर, चंडीगढ़

अक्सर सरकारी पत्रिका से अधिक आशा नहीं की जाती। यही कारण है कि विपाशा के कुछ एक अंक पढ़ने के पश्चात् मुझे बड़ी हैरानी हुई। हर लिहाज से अच्छा स्तर! आप और आपके सहयोगी बधाई के पात्र हैं।

जब परसाई जी सवाल करते हैं

फरवरी, 1988 की बात है, हिमाचल प्रदेश का साहित्यकार दल मध्यप्रदेश की यात्रा पर था और उस दिन हम लोग जवलपुर में थे। सुप्रसिद्ध कथाकार श्री हरिशंकर परसाई से मिलने हम उनके घर पर गये। प्रारंभिक परिचय हुआ और कुछ साहित्य लेखन की बात चली। इस बीच परसाई जी ने बहुत सहज भाव से सवाल किया, "आप लोगों में से किसी ने उपन्यास लिखा है ?" परसाई जी की बैठक में कुछ देर तक खामोशी तैरती रही और उनका सवाल चाय-पान की प्रक्रिया में ही कहीं गायब हो गया। लेकिन मुझे यह सवाल बराबर हाँट करता रहा। ऐसा नहीं कि हमारे बीच कोई उपन्यास लेखक नहीं था। बल्कि एकाधिक उपन्यास के रचयिता भी मौजूद थे। लेकिन यह खामोशी भी निरर्थक न थी। हमारी स्थिति उस बच्चे की तरह थी जिससे यदि सामान्य तौर पर पूछा जाए कि 'पढ़ते हो ?' तो वह कहता है—'पढ़ता हूं जी, खूब पढ़ता हूं।' और जब हम यह पूछते हैं कि 'इतिहास के अमुक काल के बारे में क्या पढ़ा है ?' तो वह सकपका कर चुप्पी साध लेता है। ऐसा नहीं कि उसने इतिहास नहीं पढ़ा होता। लेकिन उसे भरोसा नहीं हो पाता कि उसने वह काल विशेष वास्तव में पढ़ लिया है।

हमारा यह भरोसा यूं ही नहीं टूट जाता, बल्कि तभी क्षीण होता है जब हम अपने को सच्चाई के आईने में साफ-साफ देख लेते हैं। परसाई जी ने कहानी की बात की होती तो भी हम 'उसने कहा था' (गुलेरी) और 'फूलो का कुर्ता' (यशपाल) से ही शुरू करते। कुल मिलाकर स्थिति ऐसी नहीं है कि हमने कुछ लिखा ही नहीं। लेकिन जब परसाई जी सवाल करते हैं तो उसका मतलब होता है कि इधर आपने ऐसा क्या रचा है जिसे समूचे हिन्दी ही नहीं, बल्कि भारतीय साहित्य में योग के तौर पर रेखांकित किया जा सके। संभवत: अभी तक भी हमारे पास इस सवाल का जवाब नहीं है। 'हिमाचल का हिन्दी उपन्यास' शीर्षक अपने विस्तृत आकलन में डॉ० हेमराज कौशिक ने इतने सारे उपन्यासों की चर्चा की है। इसमें यशपाल, मोहन राकेश और निर्मल वर्मा प्रभृति हिन्दी के सुपरिचित प्रख्यात रचनाकारों को भी प्रदेश से किसी-न-किसी स्तर पर जुड़े रहने की वजह से शामिल किया है और अच्छी बात भी है। इनके अतिरिक्त जो उपन्यासकार

और उपन्यास हमारे समक्ष हैं वे परसाई जी के सवाल का जवाब बन पाते तो अवश्य वह खामोशी टूट गई होती । लेकिन इस बीच हमने कुछ ऐसा भी अर्जित किया है जो आश्वस्त करता है। ऐसी रचनाएं अब आने लगी हैं जो समकालीन हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में दस्तक देती दिखाई पड़ती हैं। हमने जो लिख दिया वह सर्वोत्कृष्ट होने को अभिशप्त है, इस तरह की आत्म मुग्धता छंटने लगी है और सार्थक रचनात्मकता के प्रति दृष्टि भी निश्चित रूप से साफ हुई है।

इस सबको लेकर हेमराज कौशिक ने यह सवाल भी सही किया है कि सही समीक्षा के अभाव में एक तरह की गलतफहमी बनी रही है। लेकिन इसका निर्वाह वह स्वयं किस कदर कर पाते हैं यह आप इस आकलन में देख ही रहे हैं जिसकी दूसरी किस्त आगामी अंक में भी जाएगी। कुल मिलाकर इससे एक सर्वेक्षण तो हो ही पाया है जिसके धरातल पर आलोचना के लिए कृतियों का चयन किया जा सकता है।

इस अंक में एक अफ्रीकी उपन्यास का अंश दिया गया है जो अंश होते हुए भी एक संपूर्ण रचना की तरह अपना गहरा प्रभाव छोड़ता है। 'भारतीय साहित्य की परम्परा' को लेकर डॉ० प्रभाकर श्रोत्रिय का लेख भी महत्त्वपूर्ण है और शेष विविध सामग्री भी इसमें शामिल है।

'किन्नौर के मंदिर' शीर्षक से हम यहां एक ऐसी शृंखला शुरू कर रहे हैं जिसमें वास्तुशिल्प और कला की दृष्टि से किन्नौर के प्राचीन मंदिरों के रेखांकन, शिल्प परिचय सहित रहेंगे। यह कार्य युवा कलाकार हिम कुमार चटर्जी का है जिन्होंने दुर्गम गांवों की पैदल यात्रा करके यह सब जुटाया है। किसी आगामी अंक में, यह काम करते हुए कलाकार के अनुभवों पर आधारित सामग्री भी दी जाएगी।

हमारे यहां उर्दू शायरों की एक अच्छी परम्परा रही है। नाहन के के नरेश चंद साथी प्रदेश के ऐसे प्रमुख शायरों में थे जो पारम्परिक शायरी साथ आधुनिक जीवन और सोच से बराबर बावस्ता रहे हैं। पिछले दिनों उनका देहांत हो गया है। यह संयोग ही था कि उनकी मृत्यु के कुछ महीनों पूर्व प्रसिद्ध कथाकार श्री निर्मल वर्मा और कवि-कलाकार श्री अवधेश कुमार का सृजनपीठ के एक आयोजन के उपलक्ष्य में नाहन जाना हुआ। साथी जी के घर पर उनके पुत्र प्रभातकुमार का संग्रह 'ड्रिफ्ट वुड म्यूज़ियम' देखने के बहाने उस अंतरंग शाम अच्छी बैठक जमी। बहुत अनौपचारिक और आत्मीय माहौल में जो बातें हुईं वह सब प्रभातकुमार ने टेप से उतारकर लिख भेजा है। इसे हम 'साथी जी' की 'याद' के साथ उसी रूप में दे रहे हैं।

भारतीय साहित्य की परंपरा

□ प्रभाकर श्रोत्रिय

किसी देश का इतिहासहीन होना और इतिहास के व्यवस्थित लेखे से रहित होना—दो भिन्न बातें हैं। यह ठीक है कि प्राचीन भारत में उस तरह के इतिहास लेखन का अभाव है, जिसे आधुनिक लेखक 'वैज्ञानिक इतिहास' कहते हैं। इसके पीछे भारतीय चिंतकों की जो दृष्टि रही है उस पर बहुत कुछ कहा जा चुका है। यहां इतना भर कहना है कि 'वैज्ञानिक इतिहास' के अभाव को भारत की 'इतिहास-चेतना' और 'इतिहास-बोध' का अभाव कहना, एक तरह से सतही तथ्यों को अधिक महत्त्व देकर, उससे कहीं गहरी, कहीं अर्थवान बहस को टालना है। जिस देश के पास साहित्य, दर्शन, व्याकरण, गणित से लगाकर पदार्थ-विज्ञान तक की अत्यंत समृद्ध परंपरा हो, उसे केंद्र में न रखकर, केवल नस्तीकर्म जैसे इतिहास को वरीयता देना और उसके अभाव पर पश्चाताप करना, सांस्कृतिक आचरण की महत्त्वपूर्ण निरंतरता की अनदेखी करना है।

सवाल यह भी है कि अंततः किसी देश को इतिहास की आवश्यकता क्यों होती है? संभवतः इसलिए कि पीढ़ियां अपनी मौलिक अस्मिता को पहचानें; वे अतीत की उपयोगी और गतिशील परंपरा का विकास करें; अनर्थकारी और जड़ परंपरा का ध्वंस करें और अपनी यात्रा; उपलब्धि के उस सिरे से प्रारंभ करें, जहां पिछली पीढ़ियों ने यात्रांत किया हो। यह प्रयोजन राज्य-व्यवस्थाओं, राजाओं की कालक्रमानुसार सूचियों अथवा कुछ तथ्यात्मक विवरणों से किस हद तक पूरा हो सकता है? पिछली पीढ़ियों ने ज्ञान, कर्म, अनुभव और भाव-क्षेत्र में जो कुछ उपलब्ध किया है, वही अगली पीढ़ियों की सच्ची विरासत हो सकती है।...और ऐसा भी नहीं है कि सर्जना और ज्ञान, इतिहास-शून्य होता है, वहां व्यवस्थित ढंग से इतिहास का लेखा भले ही न हो, वह संकेतित होता है; यानी इतिहास के अलावा 'चेतना' और 'बोध' में भी होता है। (जबकि आधुनिक लेखक इसी बात की शिकायत करते हैं।) क्या वैदिक साहित्य में समृद्ध सिंधु घाटी सभ्यता के नाक-नक्श साफ़ उभरे हुए नहीं हैं? रामायण और महाभारत क्या समकालीन कोसल, मगध, भरत आदि गणराज्यों की समृद्धि और अन्तर्बाह्य जटिलताओं को ज्यादा अर्थवान् और मार्मिक ढंग से प्रस्तुत नहीं करते? इसी तरह अन्यान्य साहित्य है, जहां समय अपने अंतः-सार और गहन चेतना में प्रतिबिंबित हुआ है; वहां चीजों के साथ ज़बरजस्त जिरहें और टकराहटें हुई हैं। इन माध्यमों से पाई हुई सभ्यता की आकृति और अंतर्वस्तु क्या अधिक प्रामाणिक और सारभूत नहीं है? यह याद रखा जाना चाहिए कि भारत का सांस्कृतिक-बोध, मात्र इतिहास-बोध को प्रतिकूल नहीं करता, वरन् उसे जाने कितने पीछे छोड़ देता है और इतिहास के अनेक

भ्रमों का प्रत्युत्तर देता है।

मान लीजिए कि भारत के पास समृद्ध सांस्कृतिक विरासत व होती, तो विदेशियों द्वारा गढ़े गए इतिहास के झूठ का प्रतिवाद वह नहीं कर सकता था। उदाहरण के लिए उन्नीसवीं शती में जो सुधारवादी आंदोलन चलाए गए थे उनका मूल उद्देश्य यह दर्शाना था कि भारत एक असभ्य और मिथ्याचारी देश है, जिसका उद्धार (पतित-उद्धार की तर्ज पर) अंग्रेज़ और अंग्रेज़ी शिक्षा ही कर सकती है। इन आंदोलनों के बड़े-बड़े प्रववता भले ही भारतीय थे, परन्तु उनके मन पर भी यही छाप पड़ी हुई थी। दुनिया के सामने यह उजागर किया गया कि भारत में बाल विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा जैसी नासमझ और क्रूर परंपराएं हैं; विधवाएँ आजीवन अभिशप्त रहती हैं; समाज में वर्ण और वर्ग-विषमता व्याप्त है, परंतु यह नहीं कहा गया कि ये सब लंबे पराधीनता-काल के विष-बीज हैं; और अब क्योंकि भारत में सर्वग्रासी मुक्ति चेतना जाग उठी है, तो यह अवश्यंभावी हो चुका है कि वह अंधकार युग की तमाम रूढ़ियों और विसंगतियों से सुक्त होने के लिए कटिबद्ध हो। यह एक तरह से अपने आत्म-स्वरूप को पाने का उसका संकल्प था। ऐसा सामूहिक संकल्प जब भी पैदा हो सकता है, उसके कारक तत्व महा-पुरुषों और विचारकों के रूप में जन्म लेते हैं, जो मात्र सामूहिक इच्छा के वाहक और युग-संभव होते हैं। बहुत से विचारकों का उस युग में जन्म लेना, यहीं सूचित करता है। संयोगवश वे पाश्चात्य शिक्षा और प्रभाव से इतने अभिभूत थे कि उन्होंने जन-संकल्प के 'उत्स' को न पहचानते हुए इसे पश्चिम का अवदान माना। जहां कहीं से इस संदर्भ में भारत के अतीत-स्मरण की आवाज़ उठी, तुरंत उस पर पुनरुत्थानवाद का बदनाम बिल्ला चिपका दिया गया। आश्चर्य है कि जो बातें पश्चिमी शिक्षा और प्रेरणा से जोड़ देने पर आधुनिक हो जाती थीं वे ही भारत से जोड़ने पर पुनरुत्थानवादी हो उठती थीं। इस अर्थ में अंग्रेज़ों की चाल कामयाब हुई। परंतु क्या कोई भी बता सकता है कि वैदिक साहित्य या रामायण और महाभारत में बाल विवाह के प्रसंग हैं? प्रेम और विवाह का उल्लेख केवल युवक-युवतियों के संबंध में ही हुआ है। सती प्रथा का नामो-निशान नहीं था, वरना दशरथ की रानियां और महाभारत की असंख्य विधवाएं आग में जल मरतीं। विधवा-विवाह प्राचीन भारत में स्वीकृत और मान्य था। ऋग्वेद में पति के दाह-संस्कार के समय उसकी विधवा से विवाह करने का इच्छुक पुरुष कहता है—"हे स्त्री उठो, जीवित संसार में आओ! तुम यहां उस व्यक्ति के पास खड़ी हो, जिसकी आत्मा उसे छोड़ चुकी है। आओ, मैं तुम्हारा हाथ पकड़कर तुमसे विवाह की प्रार्थना कर रहा हूं, मेरी पत्नी बन जाओ।" 'तलाक' जिसे आधुनिक सभ्यता का बड़ा अवदान कहा जाता है, प्राचीन भारत में सर्वमान्य था। जयशंकर प्रसाद ने—'ध्रुवस्वामिनी' की भूमिका में विस्तार से धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र के ऐसे प्रमाण दिए हैं, जहां स्त्री को विभिन्न परिस्थितियों में पति से 'मोक्ष' पाने का अधिकार दिया गया है। ध्रुव देवी स्वयं इसका प्रमाण थी। जिस समाज में स्त्रियां स्वयंवर के माध्यम से अपना पति चुनती हों, वहां पर्दाप्रथा का सवाल कहां पैदा होता है? बेपर्द होकर सीता राम के साथ जंगल-जंगल भटकी है। युद्ध तक में स्त्रियां शामिल होतीं थीं, दशरथ ने कैकयी को युद्ध-भूमि में ही, उसकी वीरता पर प्रसन्न होकर वे वरदान दिए थे, जिनके परिणाम-स्वरूप कालांतर में राम को वन जाना पड़ा था। वाल्मीकि रामायण में दशरथ के दाह-संस्कार में शामिल होने के लिए तीनों रानियों का श्मशान में जाने का उल्लेख है। स्त्री का स्थान पुरुष के बराबर था। ऋग्वेद में शप्तपदी के बाद पति, पत्नी को 'मित्र' कहकर संबोधित करता है

और जीवन में सहभागी होने का आग्रह करता है। 'स्त्री को फूल से भी न मारने' का आदेश वेद देते हैं। स्त्री शिक्षा, यहां तक कि सह-शिक्षा भी प्राचीनकाल में प्रचलित थी। ऐतरेय उपनिषद् में ऐसे शिक्षा-सत्र का उल्लेख है, जहां पुरुषों के साथ स्त्रियां भी शिक्षा पाती थीं। उपनिषद् की अनेक विदुषी महिलाएं प्राचीन भारत में नारी की उच्च शिक्षा का प्रमाण हैं। सारा राष्ट्र सुशिक्षित हो यह राजा के लिए अभिमान की बात थी। क्या आज भी किसी देश का प्रधान छांदोग्य उपनिषद् के राजा अश्वपति की तरह दावे के साथ कह सकता है कि 'मेरे राज्य में कोई भी व्यक्ति अशिक्षित नहीं है।' वर्णों और जातियों का वह ढांचा जो बाद में निहित स्वार्थ वालों ने गढ़ा, मूलतः नहीं था। वर्ण; मात्र कार्य-विभाजन के सूचक थे, जो कार्य और गुणों के आधार पर ही तय होते थे। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा था—"चातुर्वर्ण्यं मया स्रष्टा गुण-कर्म विभागशः।" अगर वर्ण जन्मना तय होते तो निम्न जाति में पैदा हुए ऐतरेय, 'ऐतरेय उपनिषद्' के मंत्र द्रष्टा ऋषि नहीं हो सकते थे। जिस समाज में बढ़इयों, कुम्हारों, लोहारों तक को प्रणाम किया जाता हो, वहां श्रम को नीचा स्थान देकर, मनुष्य का शोषण करने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कृष्ण यजुर्वेद में रुद्र की स्तुति के दौरान कहा गया है—"सभा के मंत्रियों, व्यापारियों को प्रणाम ! कुम्हारों, लोहारों को प्रणाम ! (आदि)" जहां सबको समान रूप से अन्न-जल मिलने, सबके साथ-साथ भोजन करने, सबके सुखी और तेजस्वी होने की कामना की जाती हो, वहां वर्ग या वर्ण-विषमता वाले समाज की रचना कैसे संभव है ? जाहिर है कि जब पश्चिमी सभ्यता पैदा भी नहीं हुई थी, भारत में वह सब वैसा ही था, जिन्हें 'सुधार' कहकर भारतीय समाज पर आयातित चेतना के रूप में लादा जा रहा था, जिसका निहितार्थ रूढ़ियों को मिटाने के बहाने परंपरा को मिटाना था। साहित्यिक और सांस्कृतिक परंपरा के जिस भुलक्कड़पने से आधुनिक भारत पश्चिम के चकाचौंधी झांसे में आ गया था उससे मुक्त होने का उपाय परंपरा का सही परिज्ञान है।

भारतीय संस्कृति के विकास का एक रहस्य यह भी है कि वह टकराहटों से ही अग्रगामी हुई है, वह आर्ष वचनों से भी चुपचाप सहमत होने वाली संस्कृति नहीं है। अगर हम भारतीय दार्शनिक परंपराओं को ही लें तो पाएंगे कि हर दर्शन दूसरे से असहमत है और अपनी अलग मान्यता रखता है। साहित्यशास्त्र की परंपरा में पहले पूर्वमत का खंडन किया जाता है, फिर अपने मत का मंडन या स्थापना की जाती है। महाकवि कालिदास ने स्पष्ट किया है कि "पुराना होने से सब कुछ सही नहीं हो जाता, न नया होने से ही सब कुछ स्वीकरणीय हो जाता है। समझदारी इसी में है कि हर चीज़ को स्वयं जांचो और परखो, फिर जो उचित लगे उसे स्वीकारो।" इसलिए जब भारत में साहित्यिक या सांस्कृतिक परंपरा की बात की जाती है तो उसकी पुनर्स्थापना करना उसका आशय नहीं होता, बल्कि बिना सोचे-समझे उसके स्वीकार या बहिष्कार का प्रतिवाद होता है। यही परंपरा के अध्ययन और अन्वेषण की भारतीय परंपरा रही। इसीलिए तथाकथित पुनरुत्थानवाद भारत के सांस्कृतिक चरित्र के संदर्भ में निरर्थक है। भारतीय साहित्य की परंपरा का अध्ययन भी हम इसी विवेकमूलक अवधारणा के साथ करते हैं।

यों तो व्यापक अर्थ में ज्ञान और भाव के क्षेत्र में की गई मनुष्य की सब प्रकार की भाषिक अभिव्यक्ति 'साहित्य' है—जिसमें वेद-वेदांग, स्मृतियां, उपनिषद्, पुराण, काव्य-साहित्य, गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, व्याकरण, काव्यशास्त्र, धर्म, नीतिशास्त्र वगैरह आते हैं, परंतु यहां

हमारा संबंध केवल उस 'साहित्य' से है जो 'सर्जनात्मक भाषिक अभिव्यक्ति' के रूप में मान्य है।

वेद

वेदों को यद्यपि साहित्य या 'काव्य' में शामिल नहीं किया जाता, परंतु वेद (विशेष रूप से ऋग्वेद) भारतीय जीवन का आदि महाकाव्य है। वेद को हिंदुओं का धर्मग्रंथ कहना उसी तरह भ्रामक है, जैसे रामायण को धर्मग्रंथ कहना। महान काव्यात्मक परिकल्पना और वैचारिक उदात्तता के कारण संभवत: वेद को अपौरुषेय कहा गया हो। परंतु यह भारतीय सर्जक चेतना का विराट आयोजन है; जीवन के चतुर्दिक प्रश्नों का गहन चिंतन है; पृथ्वी के अनुपम सौंदर्य और प्रकृति के विश्वरूप की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है। जीवन का ऐसा कोई कोना नहीं है, जिसकी ओर वेद की दृष्टि न गई हो, और सबसे बड़ी बात यह है कि लौकिक जगत् में उसकी गहरी आस्था है। ऋग्वेद कहता है कि—"किसी अलौकिक जीवन की हमें प्रतीक्षा नहीं करनी है। हमें इसी समय, यहीं प्रसन्न रहना है।" सामुदायिक जीवन पर उसके अटूट विश्वास की यह अभिव्यक्ति बिलकुल आज प्रगतिशीलता का समूहगीत लगती है: "कंकड़ पत्थरों से भरी नदी बह रही है, ऐ साथियो, साथ मिलकर चलो और इसे पार कर जाओ।" वेद में पग-पग पर ऐसी जीवंत कविता है जो समग्र रूप से महाकाव्य की औपचारिक संघटता का अतिक्रमण करती है। विराट् पर्वत शृंखला की अनघढ़ता का भी एक सौंदर्य होता है, एक आंतरिक लय होती है।

मृत्यु तक से जब वैदिक मनुष्य नहीं डरता; उसे 'अदृश्य साथी' कहता है, तब यह सोचना भी तर्कहीन है कि प्राकृतिक शक्तियों से भयभीत होकर वह उन्हें देवताओं की तरह पूजने लगा होगा। वास्तव में गहरे साहचर्य के कारण, उसके मन में प्रकृति के प्रति अगाध आत्मीयता, सौंदर्यानुभव और भव्यता की प्रतीति होने लगी थी। वह उसके जीवनका अविभाज्य अंग बनकर आंतरिक शक्तियों में तब्दील हो गई थी और सुंदर-सुंदर कल्पनाओं, आस्थाओं, अनुभवों और प्रार्थनाओं में व्यक्त होने लगी थी। प्राकृतिक देवता उसकी धार्मिक आस्थाओं के स्थूल केंद्र नहीं, बल्कि आत्मा के विश्वरूप की प्रतिकृति थे। वह उनके ज़रिए भीतर-बाहर की सारी सृष्टि में झांक लेता था। रूपों और वस्तुओं में यही पारदर्शिता तो कविता है। इंद्र के साथ आकाश में उड़कर वैदिक कवि देखता है कि "पर्वत मैदान बन गए हैं।" भीषण तूफान के रूप में इंद्र उसे 'विराट् वराह' दिखाई पड़ता है। अग्नि वैदिक कवि को ऐसा 'अतिथि' लगता है जो घर का 'मालिक' है। 'मरुद्गण', 'बिजली की हंसी से उत्पन्न' होते हैं। उषा 'सभी रंगों में अपने द्वार खोल देती है।' इस तरह वह प्राकृतिक देवताओं से अपने अनुभव-केंद्रों के दर्पण में साक्षात्कार करता है। इस अर्थ में इंद्र, अग्नि या पूषण वैदिक कवि के पुनर्सृजन हैं। पूरी सृष्टि ही उसके लिए कविता है। इसलिए हर चीज़ ऐन्द्रिय अनुभव है। मसलन शाम को जंगल 'संध्याकाल की गाड़ी के समान चरमराता है।' रात को चारों ओर व्याप्त शांति 'रात्रि के प्रति लिखी सुंदर कविता' लगती है; अग्नि धुएं के स्तंभ से आकाश को संभाले हुए प्रतीत होती है। यानी प्रकृति हो या जीवन; (या विचार ही क्यों न हो) वैदिक ऋषि को सब कुछ कवित्वमय प्रतीत होता है। इसीलिए वेद में प्राय: उपदेश या व्याख्यान न होकर अनुभूति, कथा, चित्र या प्रार्थना है। वैदिक कवि की संवेदना कितनी महीन है इसका परिचय देने के लिए सिर्फ़ एक उदाहरण काफ़ी होगा। शव को ज़मीन में गाड़ते समय पृथ्वी से कहा जाता है कि "इस पर

ज़्यादा वज़न मत डालना। इसे अपने भीतर वैसे ही छिपा लेना जैसे मां, बच्चे को आंचल में ढांप लेती है।"

ऐसी गहन संवेदना; जीवन, कर्म और आनंद की ऐसी स्वीकृति; चिंतन, अनुभव और अभिव्यक्ति की ऐसी परिपक्वता; विराट् विश्व-दृष्टि का ऐसा समारोह—शायद दुनिया ने वेद के पहले कभी नहीं देखा होगा। इस दृष्टि से वेद भले ही भारत का आदि साहित्य है, परंतु वह आदिम साहित्य नहीं है। वह भारतीय संस्कृति के उच्च स्तरीय विकासक्रम की अभिव्यंजना है। उसने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय साहित्य और जीवन को निरंतर प्रभावित और प्रेरित किया है।

लौकिक काव्य-युग : रामायण और महाभारत

वैदिक भाषा जिसे 'छांदस' कहा जाता है, जब व्याकरण से बांधी और संवारी गई तब वह 'संस्कृत' हो गई जो अपने समय की सर्वमान्य राष्ट्रभाषा बनी। इसलिए संस्कृत का साहित्य वस्तुतः राष्ट्रीय साहित्य है।

वेद और ज्ञान की अनेक शाखाओं की समृद्ध पृष्ठभूमि में संस्कृत साहित्य का प्रणयन हुआ। उसके आदि कवि वाल्मीकि भारत के भी आदि कवि हैं, क्योंकि साहित्य की परिकल्पना के अनुरूप पहला महाकाव्य वाल्मीकि द्वारा ही रचा गया। उनके मुख से प्राणि-मात्र की संवेदना में निकला पहला छंद भारत की आदि कविता है। हुआ यह कि क्रौंच पक्षी का जोड़ा वन में क्रीड़ा कर रहा था। तभी किसी व्याध ने एक को बाण से बींध दिया, दूसरा चीखने लगा। आदि कवि को उसकी वेदना ने व्याकुल कर दिया और उन्होंने व्याध को शाप दे डाला कि "हे व्याध, तुझे कभी प्रतिष्ठा नहीं मिलेगी, क्योंकि तूने क्रीड़ामग्न क्रौंच मिथुन में से एक का वध कर दिया है" :

"मा निषाद प्रतिष्ठात्वमगमः शाश्वती समा
यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधी काम मोहितः।"

इस आदि छंद से प्रकट होता है कि भारतीय काव्य का जन्म विराट करुणा या तीव्र संवेदना में से हुआ है। कहा यह भी जा सकता है कि अपने स्वार्थ से रहित संवेदना ही काव्य का स्रोत हुआ करती है। वाल्मीकि की अद्भुत काव्य-सृष्टि के मूल में यही संवेदना है जिसने लोक रक्षक राम और धरती जैसे धैर्य से सारी आपदाओं को झेलने वाली नारी सीता रची थी।

'रामायण' अधर्म के विरुद्ध धर्म के संघर्ष और उसकी विजय का काव्य है। वाल्मीकि ने इसके द्वारा असंतुष्ट भोगवाद के विरुद्ध सांस्कृतिक शील की विजय को रेखांकित किया है। परंतु यह विजय बिना तपस्या के नहीं मिलती; और न मिथ्या शक्तियां कभी अंतिम रूप से पराजित होती हैं, वे वेष बदलकर फिर-फिर आक्रमण करती हैं। यही कारण है कि सीता को दुवारा निर्वासन की यातना झेलनी पड़ती है और राम का शेष जीवन भी इसी दाह को सहते-सहते बीतता है। अनाचार से लड़ाई लड़ने वाले और आदर्श तथा मर्यादा की स्थापना करने वाले राजा के पुत्रों को, जंगल में जन्म लेना पड़ता है। अपनी बेटी की अनंत वेदना से धरती का कलेजा फट जाता है और वह उसमें समा जाती है। नई पीढ़ी फिर से जीवन का नया अध्याय शुरू करती है।

वाल्मीकि ने आदर्श की स्थापना के लिए अनवरत संघर्ष और आत्मोत्सर्ग की काव्यमयी

अभिव्यंजना से भारत के सांस्कृतिक चरित्र की प्रतिष्ठा की। उन्होंने जीवन के संघर्ष और मूल्य के बिंदु को इस तरह और ऐसी जगह छुआ कि हर युग को यह कृति बार-बार रचना के लिए प्रासंगिक प्रतीत हुई। भारतीय भाषाओं में रामायण की प्रेरणा ने सैकड़ों रचनाओं को जन्म दिया है। आज तक भी 'रामायण' और 'रामकथा' न केवल भारतीय जीवन का अभिन्न अंग है बल्कि रचनाकारों के लिए प्रेरणा का प्रमुख केन्द्र भी बनी हुई है। संस्कृत में ही इसकी कथा पर आधारित और इससे प्रेरित लगभग एक दर्जन से अधिक महाकाव्य, दो दर्जन नाटक और कई मुक्तक काव्य लिखे गए। रामायण की अंतःप्रेरणा कितनी रचनाओं में अदृश्य रूप में है, इसका तो कोई हिसाब ही नहीं है। अन्य देशों में भी रामकथा का पहुंचना इसकी सार्वदेशिकता का प्रमाण है। रामायण के अलावा संसार में ऐसा कोई काव्य नहीं है जो साहित्य के साथ लोकजीवन में भी इतना परिव्याप्त हो।

रामायण के बाद भारतीय काव्य का दूसरा बड़ा प्रस्थान 'महाभारत' है। यह विश्व का सबसे विस्तृत काव्य है। इसे 'महाकाव्यों का महाकाव्य' और 'विश्वकोशात्मक ग्रंथ' कहा गया है। इसके रचयिता तो यद्यपि महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास हैं, लेकिन वर्तमान महाभारत, जिसमें एक लाख श्लोक हैं, अनेक अज्ञात कवियों के योगदान से एक साझा काव्य बन गया है। लोगों ने अपनी प्रतिभा इस काव्य को अनाम रूप से क्यों सौंपी होगी, यदि इस पर विचार करें तो लगेगा कि इस विराट् फलक में जो अभाव उन्हें अनुभव होता था, यथाशक्ति उसे भरने का सर्जनात्मक नागरिक दायित्व निभाते हुए वे किसी महान् सामाजिक कृति को अपेक्षानुरूप संपूर्णता दे रहे थे। किसी श्रेष्ठ कृति को और श्रेष्ठ और सम्पूर्ण बनाने की आकांक्षा ने ही शायद महाभारत को एक जनतांत्रिक कृति बना दिया है। लेकिन इसमें संदेह नहीं कि जिन रचनाकारों ने इसमें योगदान दिया वे अत्यंत प्रतिभाशाली, विचारवान् और विद्वान थे, उनके भीतर परस्पर ऐसा अकथित अंतर्समन्वय था कि कृति की आंतरिक संघटना को उनके अवदान से कोई क्षति नहीं पहुंची।

महाभारत शक्ति और वेग का काव्य है; इसमें बनती हुई सभ्यता के सारे मिश्रण, तनाव, अव्यवस्था, अशांति और संघर्ष हैं। नीति और अनीति; सच और झूठ; भौतिक और आध्यात्मिक; स्वार्थ और परमार्थ का इतना विचित्र ताना-बाना इस महाकाव्य में बुना गया है कि पाठक स्तब्ध रह जाता है। महाभारत के इस जटिल और अनेकार्थी स्वरूप से स्वयं व्यास भी अपरिचित नहीं थे। शायद उन्हें यह एहसास हो गया था कि इतनी वैविध्य और जटिल विराटता से नीति, धर्म आदि का स्पष्ट मार्ग पा सकना कठिन है। इसीलिए उन्हें कहना पड़ा कि—"धर्म का रहस्य तो गुफा में रहता है। मैं तो निश्चित रूप से केवल एक ही बात कह सकता हूं कि 'मनुष्य से श्रेष्ठ कोई नहीं है' न धर्म, न नीति। जिससे मनुष्य का कल्याण हो, वही धर्म है, वही नीति है। स्पष्ट है कि महाभारत में धर्म-नीति और मानव संबंधों के अनेक और कहीं-कहीं जो विपरीत मॉडल रचे गए हैं, वे भारत की बहुमुखी और प्रजातांत्रिक संस्कृति के प्रतीक हैं, परंतु उनका अंतिम निर्धारण मनुष्य को केंद्र में रखकर ही किया जाना चाहिए, सिद्धांतों और चरित्रों को नहीं।

महाभारत में क्या नहीं है—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, घृणा, ईर्ष्या, हिंसा, कर्तव्य, युद्ध, कृषि, व्यवसाय, राज्य-व्यवस्था, समाज, परिवार, कुटिलता, सज्जनता, अनाचार, सदाचार अर्थात् जीवन के असंख्य पक्ष और व्यवहार वहां हैं। इसलिए कहा गया है कि जो महाभानत में नहीं है, वह भारत में भी नहीं है। इस अर्थ में भी वह भारत का सच्चा राष्ट्रीय काव्य है। महाभारत के

विराट् आलोड़न से अगर अमृत निकलता है तो यही कि यह—'अधर्म पर धर्म की विजय का काव्य है' और धर्म का अर्थ मानव-कल्याण के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

महाभारत संक्रमणशील मिश्र संस्कृति का एक तरह से समाज शास्त्र है। उसके विराट् कलेवर में काव्य और लोक की परंपराओं का अद्‌भुत मिश्रण है। विकासशील महाकाव्यों के ही नहीं, आगामी अलंकृत महाकाव्यों के तत्व भी यहां मौजूद हैं। इसलिए भी महाभारत लोक और काव्य दोनों की प्रेरणा के केन्द्र में रहा है। एक तो इसकी कथा का ढांचा, चरित्रों का वैचित्र्य और जटिलता ही ऐसी है कि हर युग में व्यक्ति और समाज को यहां से ऐसे बीज मिल जाते हैं जिनका विकास वह अपनी भाव-भूमि और युग-भूमि में कर सकता है; दूसरे, इसमें संघर्ष और आदर्श का जो तत्व-बोध है वह भी अत्यंत गत्यात्मक है। इसीलिए महाभारत के वस्तु बीज से संस्कृत और प्राचीन भाषाओं के अलावा भारत की समस्त आधुनिक भाषाओं में अनेकानेक कृतियां रची गई हैं। भारत की प्रायः सभी भाषाओं में, और विश्व की अनेक भाषाओं में महाभारत का अनुवाद हुआ है—अनेक व्याख्याएं और प्रतिपादन हुए हैं। यह क्रम आज भी टूटा नहीं है; बल्कि कई बार लगता है कि जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा है महाभारत किसी-न-किसी अर्थ में अधिक प्रासंगिक होता जा रहा है। विराट् कल्पनाशीलता, जीवन-मर्म की आश्चर्यजनक समझ, व्यापक काल-बेधी विश्व-दृष्टि, कथा-संरचना के विलक्षण कौशल आदि के कारण रामायण और महाभारत न केवल भारत की, वरन् विश्व की बेजोड़ मानवीय सर्जना है।

भारतीय संस्कृति के निर्माण में कवियों की, विशेषतः वाल्मीकि और व्यास की भूमिका के बारे में डॉ० रामविलास शर्मा लिखते हैं—

"(भारतीय) संस्कृति के निर्माण में इस देश के कवियों का सर्वोच्च स्थान है। इस देश की संस्कृति से रामायण और महाभारत को अलग कर दें तो भारतीय साहित्य की आंतरिकता टूट जाएगी। किसी भी बहुजातीय राष्ट्र के सामाजिक विकास में कवियों की ऐसी निर्णायक भूमिका नहीं रही, जैसी इस देश में व्यास और वाल्मीकि की है।"

संस्कृत साहित्य : विस्तार और दिशाएं

साहित्य के इतिहास में अक्सर लोकव्यापी महाकवियों के युग के बाद आने वाले कवियों के लिए रचनाकर्म जबरदस्त चुनौती बनता रहा है। परंतु प्रतिभाएं किसी-न-किसी तरह अपना रास्ता खोज ही लेती हैं। 'छांदस' और 'संस्कृत' का पिछला युग निश्चय ही महान उपलब्धियों का युग था। परंतु एक तरह से इस साहित्य की तुलना विराट् जंगल से की जा सकती है—मुक्तता, नैसर्गिकता, गहनता आदि सभी दृष्टियों से। इसीलिए शायद आगामी कवियों ने इसे उद्यान में बदलने का बीड़ा उठाया। साहित्य के इतिहासकारों ने यहां से अलंकृत महाकाव्यों का प्रारंभ माना है। लेकिन भारतीय साहित्य के बारे में यह जान लेना जरूरी है कि उसकी कलात्मकता का पश्चिम की कलावादी प्रवृत्ति से कोई साम्य नहीं है। भारतीय कला चाहे जिस पराकाष्ठा पर पहुंचे, वह स्वयं अपना उद्देश्य नहीं होती। जिन्हें अलंकृत महाकाव्य कहा जाता है उनकी प्रमुख चिंता भी यही रही है कि कैसे भीतर की अर्थवत्ता से बाहर की अर्थवत्ता का श्रेष्ठतम सामंजस्य बिठाया जाए? पिछले महाकाव्यों से इसी संरचनात्मक गुण की दृष्टि से ये अलग और विशिष्ट हैं। फिर भी रामायण और महाभारत इन कवियों के प्रेरणा-केन्द्र बने रहे। यह तथ्य है कि व्यासोत्तर संस्कृत साहित्य में जितनी रचनाएं विख्यात हुई हैं उनमें से अधिकांश

की काव्य-वस्तु या तो रामायण से ली गई है या महाभारत से। खैर, अब साहित्य; कानन से उद्यान का रूप लेने लगा, जिसमें कला सौष्ठव भी था और विविधता भी। परिणामस्वरूप महाकाव्य, खंडकाव्य, गीतिकाव्य, मुक्तक, नाटक, आख्यायिका, गद्य-काव्य, चम्पू आदि सजे-संवरे साथ-साथ लहलहाने लगे।

रामायण और महाभारत के परवर्ती रचना-युगों में कम-से-कम ऐसे एक दर्जन रचनाकार हुए हैं जिन्होंने भारतीय साहित्य का यश संसार में फैलाया। इनमें कविकुलगुरु **कालिदास** का नाम सबसे ऊपर आता है। वे बहुमुखी प्रतिभा के महाकवि थे जिनके महाकाव्य, नाटक और गीतिकाव्य श्रेष्ठ रचनाओं के मानदंड हैं। उनका नाटक—'अभिज्ञान शाकुंतलम्' विश्व की अप्रतिम रचना है। जर्मन महाकवि गेटे ने इसके बारे में कहा था कि 'यदि स्वर्गीय सुषमा और पार्थिव ऐश्वर्य का मिलन किसी एक आत्मा में देखना चाहते हो तो मैं तुम्हारा ध्यान संसार की एक ही कृति की ओर आकर्षित करूंगा, वह है—शकुंतला।' कालिदास के गीतिकाव्य 'मेघदूत' के बारे में रवीन्द्रनाथ ठाकुर का कथन है कि इसमें 'सनातन मानव-हृदय का मर्म मधुर संदेश' और 'अतलस्पर्शी विरह' है। अपनी इसी देशकालकजयी शक्ति के कारण 'मेघदूत' विश्व की ऐसी तीसरी रचना है, जो सर्वाधिक भाषाओं में अनूदित हुई है; भारत की अनेक भाषाओं में इसके अनुकरण पर सौ से ज़्यादा काव्य लिखे गए। 'रघुवंश' भी भारतीय महाकाव्यों की प्रथम कोटि में रखा जाता है। यद्यपि कालिदास प्रेम-सौन्दर्य की मार्मिक व्यंजना और अनूठी उपमाओं के लिए विख्यात हैं, परंतु इसी बूते पर वे 'कविकुलगुरु' नहीं हैं, बल्कि इसलिए हैं कि उन्होंने तपस्या, उदात्तता, संवेदना और दार्शनिक चिंतन को उच्चतम कलात्मक सामंजस्य में उपलब्ध किया है। उनकी रचनाओं में अंतःप्रकृति को विश्व-प्रकृति से एकतान होते देखना किसी भूमंडलीय उत्सव में शामिल होने जैसा है। वे भारत की आधारभूत एकता, विश्व-दृष्टि और कलात्मक साधना की समष्टि के कवि हैं। आनंदवर्द्धन ने शायद ठीक ही अनुमान लगाया था कि दुनिया में ऐसे महाकवि बहुत-से-बहुत चार-पांच होंगे।

'अभिज्ञान शाकुंतलम्' के बाद संस्कृत की दो कृतियां बहुत विख्यात और विश्वस्तर पर लोकप्रिय हुईं—'गीत गोविंद' और 'पंचतंत्र'। **जयदेव** के 'गीतगोविंद' का कथ्य कृष्ण का लीला-चरित्र और राधा की प्रेम विह्वलता है। परंतु उच्चकोटि की रहस्यानुभूति ने इस लीला-रस को महारस में बदल दिया है। लगता है गीत गोविंद के रूप में संस्कृत भाषा ने सरस्वती को काव्य और दर्शन की संपुटी में प्रेम का अर्घ्य दिया हो। यह देखकर सुखद विस्मय होता है कि इस कृति में निहित रस ने भाषा के कलेवर तक को इतना लचीला बना दिया है कि भाषा रस हो गई है। छंद, शब्द और वस्तु का ऐसा तदाकार करीब-करीब असंभव होता है। ऐसे ही काव्य को 'मूर्तिमान रस' कहना ठीक होगा। संस्कृत के इतिहासकार डॉ० कीथ ने 'प्रभाव की दृष्टि से' गीत गोविंद को 'किसी भी अन्य भारतीय रचना से श्रेष्ठ' माना है। यह कहकर कीथ ने कदाचित अधिक भावुकता से काम लिया है, परंतु इससे इस काव्य की अत्यधिक प्रभावशीलता का अनुमान तो लगाया ही जा सकता है। इस रचना ने मैथिल कोकिल विद्यापति और हिन्दी के कृष्णभक्त कवियों के अलावा मराठी, गुजराती, कन्नड़ आदि के अनेक रचनाकारों को प्रेरणा दी है, संस्कृत में तो इसके अनुकरण पर ढेरों रचनाएं हुईं। महाराष्ट्र के संत चैतन्य महाप्रभु तो 'गीत गोविंद' पर न्यौछावर थे।

ईसा के 200 साल पहले लिखे गए **विष्णु शर्मा** के नीति-कथा-संग्रह 'पंचतंत्र' ने न केवल

भारतीय कथाकारों को बल्कि यूनानी कथाकार ईसप तक को प्रभावित किया। पंचतंत्र के सीरियन और अरबी अनुवादों से पता चलता है कि इनसे भी पूर्व 'पहलवी' जैसी विदेशी भाषा में इसका अनुवाद हो चुका था। संसार की शायद ही ऐसी कोई भाषा बची होगी जिसमें पंचतंत्र का अनुवाद न हुआ हो। बाइबल के बाद यह विश्व की सर्वाधिक प्रचलित पुस्तक मानी जाती है; और यदि धार्मिक और राजनीतिक कारणों को हटा दें तो विश्व में लोकप्रियता की दृष्टि से इसका पहला स्थान होगा। 'पंचतंत्र' में पशु-पक्षियों के माध्यम से कही गई बाल-नीति-विषयक कथाएं हैं, जो एक ओर बहुत सरल और दिलचस्प हैं, तो दूसरी ओर प्रतीकात्मक भी हैं। इस तरह ये कथा और कविता दोनों का मज़ा देती हैं। यदि विश्व की बाल-शिक्षा-प्रणालियों में ऐसी कथाओं की भूमिका का पता लगाया जाए तो निस्संदेह वे बच्चों की शिक्षा प्रणाली को अधिक रोचक बनाने और उनकी समझदारी को विकसित करने वाली सिद्ध होंगी।

सामाजिक क्रांति की दृष्टि से भी संस्कृत साहित्य की भूमिका नज़रअंदाज़ नहीं की जा सकती। सामंती युग में आभिजात्य समाज के बीच भी कुछ रचनाकारों ने यथार्थ की मशाल जलाने का साहस दिखाया। **शूद्रक** का 'मृच्छ कटिक' और **दण्डी** का 'दशकुमार चरित्र' इसके प्रमाण है। लेकिन इससे यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि भारतीय साहित्य की यह कोई अनोखी घटना है। पिछले युगों के ब्यौरे में न जाएं तब भी सिर्फ नाट्य साहित्य का इतिहास देखने पर ही हमें संस्कृत के प्रथम नाटककार भास में ही इस क्रांति के सूत्र मिल जाएंगे। भास ने महाभारत और रामायण के अलावा लोककथाओं की विषयवस्तु पर भी नाटक लिखे थे, जो प्राय: जन-परंपराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें एक नाटक है 'दरिद्र चारुदत्त।' शूद्रक ने इसी कथा-वस्तु पर 'मृच्छ कटिक' नाटक लिखा। इसमें उसने भास से भी आगे बढ़कर सामाजिक और आर्थिक विसंगतियों को उभारा। आमतौर पर संस्कृत में प्रचलित उच्च वंशीय व्यक्तियों के प्रेम की जगह इस नाटक में दरिद्र ब्राह्मण चारुदत्त और समाज-तिरस्कृत वेश्या वसंतसेना के प्रेम को आधार बनाया गया है। इस दृष्टि से यह भारत की यथार्थवादी परम्परा की पहली सशक्त रचना है।

शूद्रक के साथ ही हमारा ध्यान नाटककार **विशाखदत्त** की ओर भी जाता है। उन्होंने भी परंपरा का अतिक्रमण किया था। अपने नाटक 'मुद्राराक्षस' की कथा उन्होंने पुराणों या प्राचीन काव्यों से न लेकर इतिहास से ली थी। दूसरी बात यह है कि उन्होंने नाटक की भाव-परंपरा के विरुद्ध यथार्थवादी बौद्धिक नाटक की रचना की; 'मुद्राराक्षस' का नायक चाणक्य अत्यंत सतर्कता और कुटिलता से कूटनीतिक चालें चलता है और पल भर को भी भावुकता का शिकार नहीं होता। उसमें राजनीतिक घात-प्रतिघात का अद्भुत वेग है। इस दृष्टि से 'मुद्राराक्षस' भारत का पहला राजनीतिक नाटक है।

दण्डी का 'दशकुमार चरित' भी यथार्थवादी धारा की कथा-रचना है। इसमें दण्डी संपूर्ण रूप में जन-कलाकार के रूप में उभरते हैं। सातवीं शती की आम जनता के जीवन में जो कुछ भला-बुरा, कर्म-कुकर्म था, वह नाटक में रख दिया गया है। यथार्थ की प्रकृति के अनुरूप असुंदर पक्ष, सुंदर की तुलना में अधिक उभरा है। गद्य की यथार्थवादी प्रकृति को संस्कृत गद्यकारों में सबसे पहले दण्डी ने ही पहचाना है।

संस्कृत साहित्य के विशिष्ट पक्षों की चर्चा **भवभूति** के बिना पूरी नहीं हो सकती। करुण-रस की व्यंजना करने वाले वे अन्यतम नाटककार हैं। 'उत्तर रामचरित' में प्रवाहित करुणा से

यद्यपि 'पत्थर का दिल भी पिघल जाता है'—लेकिन यह निरी वेदना या आत्म-ताप नहीं है। लोकाराधन की पृष्ठभूमि ने इसे उदात्त करुणा में बदल दिया है। सीता को, लोकादर्श की स्थापना के लिए, वनवास देकर क्या राम स्वयं कम आहत हुए थे ? दोनों की असह्य वेदना, कर्तव्य और धैर्य से जूझते हुए दोनों के व्यक्तित्वों को क्या अर्थ देती है—यह सिर्फ भवभूति के शब्द ही बयान कर सकते थे। पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि में अनेक करुणार्द्र कथाएं लिखी गई हैं, परंतु वे 'उत्तर रारचरित' की करुणा को नहीं छू सकीं।

इसी संदर्भ में अलंकृत युग के पहले महाकवि **अश्वघोष** को भी नहीं भूला जा सकता। उनका महाकाव्य 'बुद्ध चरित' परित्यक्ता यशोधरा की वेदना (उस प्रारंभिक काल में) बड़ी स्वाभाविकता से व्यक्त करता है। अश्वघोष की यशोधरा की विशेषता है कि वह गौतम के पत्नी-त्याग को चुनौती भी देती है और स्त्री होने के कारण भीतर से विगलित भी रहती है। अश्वघोष की यह रचना बुद्ध के चरित्र को लेकर संस्कृत में लिखी पहली रचना है।

अलंकरण, पाण्डित्य, वस्तु और भाव-वर्णन की सूक्ष्मता, विस्तार तथा विदग्धता की दृष्टि से संस्कृत के तीन महाकाव्य विख्यात हैं—**भारवि** का 'किरातार्जुनीयम्', **माघ** का 'शिशुपाल वध' और **श्री हर्ष** का 'नैषध चरित'—इन्हें वृहत्रयी कहा जाता है। वास्तव में ये तीन महाकाव्य ही सही अर्थ में 'अलंकृत महाकाव्यों' की श्रेणी में आते हैं। युगों से पंडित और काव्य-रसिक इन पर रीझते चले आए हैं। यद्यपि पांडित्य और चमत्कार-प्रदर्शन की प्रवृत्ति की बहुतायत इनमें है, फिर भी इससे इन काव्यों की महत्ता कम नहीं होती। कवि-परंपरा के लिए ये महाकाव्य अनेक दृष्टियों से उपजीव्य रहे हैं।

इसी परंपरा में **बाण भट्ट** की 'कादंबरी' भी आती है जो संस्कृत साहित्य की अद्वितीय गद्य रचना है। 'कादंबरी' वास्तव में रचना-कौशल, पांडित्य, कल्पना की उड़ान और सूक्ष्म चित्रण की मिसाल है। इस दृष्टि से इसकी तुलना संस्कृत साहित्य में केवल महाकवि श्री हर्ष के 'नैषध चरित' से की जा सकती है। लगता है, बाण भट्ट जीवन का कोई भाव-क्षेत्र, कर्म-क्षेत्र, ज्ञान क्षेत्र अनछुआ नहीं छोड़ना चाहते थे। इसमें उन्हें सफलता भी मिली। तभी यह कहावत चल पड़ी कि 'बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्' (दुनिया में जो भी है बाण की जूठन है)।

संस्कृत की बहुमुखी काव्य-सृष्टि में मुक्तक रचनाओं की भी अलग छटा है। **भर्तृहरि** के तीन शतक—'श्रृंगार शतक', 'नीति शतक' और 'वैराग्य शतक' ऐसी मुक्तक रचनाएं हैं जो संबन्धित पक्षों को बड़ी कुशलता और मार्मिकता से व्यक्त करती हैं। ये शतक एक तरह से काव्यात्मक सूक्तियों के कोश हैं, जो काव्य रसिकों की ज़बान पर रहे हैं। एक अन्य मुक्तक रचना—'अमरु शतक' कवि **अमरु** द्वारा लिखी प्रेम-चित्रों और प्रेमानुभूतियों की हृदयस्पर्शी व्यंजना है। **गोवर्धनाचार्य** की 'आर्या सप्तशती' आर्या छंद में भावों की गहराई और सघनता के लिए विख्यात है। इन शतकों से पता लगता है कि संस्कृत कवियों का लोक साहित्य के प्रति रुझान बढ़ रहा था जो एक तरह से जन-भाषा-युग के उद्भव की सूचना है। संस्कृत के श्रृंगार परक मुक्तकों का हिन्दी के रीति साहित्य पर बहुत प्रभाव है।

साहित्य के साथ संस्कृत काव्यशास्त्र की भी दुनिया में कोई सानी नहीं है। **भरत** का नाट्य-शास्त्र **आनंदवर्द्धन** का 'ध्वन्यालोक', **मम्मट** का 'काव्य प्रकाश', **विश्वनाथ** का 'साहित्य दर्पण', **कुंतक** का 'वक्रोक्ति जीवितम्', आदि संस्कृत काव्यशास्त्र के ऐसे अनूठे ग्रन्थ हैं, जिनमें अद्भुत पांडित्य, विवेचन क्षमता और गंभीर साहित्य चिंतन है। यह महान शास्त्रीय विरासत

युगों के पार आज भी भारतीय साहित्य का मार्गदर्शन कर रही है।

छांदस और संस्कृत का ऐसा समृद्ध, बहुआयामी और क्रांतदर्शी साहित्य (जिसकी बहुत थोड़ी झलक यहां दी जा सकी है।) न केवल आधुनिक भारतीय भाषाओं का उपजीव्य रहा, बल्कि अदृश्य रूप से उसके भीतर सांस्कृतिक एकता का संचार करता रहा है। भारत की प्रतिभा और सोच को विश्व स्तर पर प्रतिष्ठित करने में इस साहित्य ने जो भूमिका निभाई उससे राजनीतिक पराधीनता के काल में भी भारत सांस्कृतिक दृष्टि से विपन्न न हो सका। भारतीय जनता का मस्तक ऊंचा उठाए रखने में इस समृद्ध साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान है, जिसने एक अत्यन्त उन्नत भाषिक समाज के सदस्य के रूप में भारतीय 'नागरिक को सदैव गौरवान्वित किया।

जनभाषा और साहित्य

भाषा-विकास का स्वभाव नदी जैसा होता है। वह भी उद्‌गम-केन्द्र से निकलकर अनेक बोलियों की सहायक धाराओं से निरंतर प्रशस्त होती रहती है; दूसरी ओर उसमें अनेक भाषिक धाराएं फूटती रहती हैं। 'छांदस' या 'वैदिकभाषा' जब व्याकरण के नियमों में बंध-संवर कर 'संस्कृत' हो गई, तो जनता की बोलियों के सहयोग से व्यवहार की नई भाषा 'पालि' विकसित हुई। (विद्वानों का मत यह भी है कि परिनिष्ठित भाषा मौर लोकभाषा का समानांतर विकास हुआ, परंतु यहां हम केवल सामान्य भाषिक विकास का ही संकेत कर रहे हैं।) पालि के व्याकरण में बंधने पर 'प्राकृत' के विभिन्न रूप और प्राकृतों के नियमन के बाद 'अपभ्रंश' भाषाएं विकसित हुईं। अपभ्रंश के व्याकरण-बद्ध होने पर उनसे अधिकांश आधुनिक भारतीय भाषाओं ने जन्म लिया। ये सब 'आर्य-भाषा समूह' में आती हैं। यद्यपि दक्षिण की चार भाषाएं—'तमिल', 'तेलुगु', 'मलयालम' और 'कन्नड़' द्राविड़ मूल की हैं, और 'काश्मीरी' अलग भाषा-समूह की है —फिर भी ये सभी भाषाएं वहीं से अपनी सांस्कृतिक शक्ति पाती हैं, जहां से आधुनिक आर्य भाषाएं; इनकी भी साहित्यिक विरासत वही है जो आर्य भाषाओं की है; इनमें भी रामायण और महाभारत के कथा-स्रोतों से अनेक कालजयी कृतियों ने जन्म लिया है; इनमें भी अधिकांश शब्द संस्कृत मूल के हैं। कश्मीरी में तो 90% संस्कृत शब्द हैं। वैसे भी काश्मीर भारतीय दर्शन और संस्कृति का महत्वपूर्ण विद्यापीठ रहा है और दक्षिण तो इस संस्कृति की विरासत का योग्य संरक्षक है ही। भारत को सांस्कृतिक एकता में गूंथने वाले अधिकांश संत वहीं से उत्तर की ओर आए हैं। दक्षिण के अवदान को रेखांकित किए बिना हिन्दी तथा उत्तर भारतीय भाषाओं के भक्ति साहित्य आंदोलन की प्रेरणा का सही मूल्यांकन संभव नहीं है। इसलिए कहने को कुछ भाषाएं भले ही अलग भाषा-परिवारों की हों, परंतु सब एक ही सांस्कृतिक विरासत और जातीय परिवेश में विकसित हुई हैं।

संस्कृत के बाद विकसित भारतीय भाषाओं का साहित्य देश की सर्जनात्मक निरंतरता का सूचक है।

सामान्यतः संस्कृत की प्रथम उत्तराधिकारिणी लोक-भाषा **पालि** है। पालि मुख्य रूप से बौद्ध साहित्य की भाषा बनी रही और बौद्ध धर्म के साथ श्रीलंका, बर्मा आदि में भी पहुंची, जहां उसने बुद्ध की अनुकंपामयी विश्व-दृष्टि का प्रसार किया। पालि के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'त्रिपिटक' हैं, जिनमें गौतमबुद्ध की वाणी संकलित है। ये प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में प्राकृत, अपभ्रंश

और अन्य भाषाओं की अनेक रचनाओं के प्रेरणा-स्रोत रहे हैं। पालि साहित्य के युग-निर्माता कवि बौद्ध—**अश्वघोष** की 'अट्ठ कथा' और 'विसुद्ध भाग' न केवल बौद्ध धर्म की आचार संहिता और विश्वकोश के रूप में मान्य हैं, वरन कवित्वपूर्ण संवेदन के भंडार भी हैं। 'मिलिंद पञ्ह' वैसे बौद्ध धर्म का गौरव ग्रन्थ माना जाता है, परंतु यह जाति-धर्म-निर्विशेष, विश्व-मानवता का साहित्य भी है। धर्म के मानवीकरण और संवेदन-तत्वों के कारण पालि साहित्य का विशेष महत्व है।

प्राकृत में लोकतत्व पालि से अधिक है। कई रूपों में विकसित प्राकृत सभी भारतीय लोक भाषाओं का प्रतिनिधित्व करती है। इसमें मुख्य रूप से जैन साहित्य लिखा गया, परंतु अन्य प्रकार के साहित्य की दृष्टि से भी इसका कम महत्व नहीं है। लोक-मंच का विकास प्राकृत की अपनी उपलब्धि है। संस्कृत, अपभ्रंश और हिन्दी में प्रेम-कथा का विकास प्राकृत प्रेम-गाथाओं से हुआ है। यायावर **राजशेखर** की 'कर्पूर मंजरी', **रुद्रपास** की 'चंद्रलेहा' और **कोउलइ** की 'लीलवई' श्रृंगार और प्रेम की मार्मिक रचनाएं हैं। 'गाहा सत्तसई' प्राकृत कवियों की 700 प्रेम गाथाओं का सरस और मनोरम संग्रह है। प्राकृत में व्यक्त प्रेम भावना की विशेषता यह है कि इसमें प्रेम की लोक-व्याप्ति है, अर्थात् वह संभ्रांत समाज में कैद न होकर जन-साधारण की प्रेम भावना और प्रेम-संबंधों को व्यक्त करता है। प्राकृत में लिखा महाकवि **प्रवरसेन** का महाकाव्य 'सेतुबंध' ऐसी कृति मानी जाती है जिसकी जोड़ संस्कृत में भी नहीं है। **रविषेण** का 'पउम चरिउ' प्राकृत का पहला राम काव्य है, जिसमें यथार्थ, बुद्धिवाद और अंतः-प्रकृति के निरूपण की प्रधानता है। **संघदास गणि** की कथा-रचना 'वासुदेव हिण्डी' विश्वकथा साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। **हरिभद्र** की 'समराइच्च कहा' बाणभट्ट की कादम्बरी के समकक्ष मानी जाती है। **गुणाढय** ने 'वृहत्कथा' के रूप में एक तरह से लोक-कथाओं का विश्व-कोश ही रच दिया है। **हरिभद्र सरि** का 'धूर्ताख्यान' प्राकृत की विशेष देन है; जिसमें व्यंग्य और उपहास के माध्यम से लाक्षणिक ढंग से पौराणिक कर्मकाण्डों के पाखंड का खंडन है। शैली की दृष्टि से यह रचना भारतीय कथा साहित्य में शीर्ष स्थानीय है। 'कुम्मापुत्र चरित्र', 'महावीर चरित्र' (काव्य) और 'कुवलय माला' (चम्पू) भी प्राकृत साहित्य की उल्लेखनीय कृतियां हैं। इस तरह प्राकृत साहित्य एक ओर जनता के तेवर और लोक-रुचियों का प्रतिनिधित्व करता है तो दूसरी ओर उसने साहित्यिक दृष्टि से भी भावी साहित्य को प्रभावित किया है।

अपभ्रंश अधिकांश आधुनिक भारतीय भाषाओं की जननी है। अपभ्रंश में न केवल जैन साहित्य की प्रमुखता है बल्कि वह अन्य प्रकार के साहित्य की दृष्टि से भी समृद्ध है। **स्वयंभू** का 'पउम चरिउ', **पुष्पदंत** का **'महापुराण'**, धनपाल की 'भविसयत्त कहा', **यश कीर्ति** का 'हरिवंश पुराण' जैसे महाकाव्य अपभ्रंश साहित्य की यशस्वी धरोहर हैं। **पुष्पदंत** का 'णाय कुमार चरिउ' और **कनकामर** का 'करकंडु चरिउ' जैसी रचनाओं ने चरित काव्यों की भावी परंपरा को प्रभावित किया है। **जोइन्दु** का खंडकाव्य 'परमप्पयासु' कर्मकांडों के खंडन और सदाचार की स्थापना वाली प्राकृत-परंपरा का निर्वाह करता है। जैनेत्तर साहित्य में **अब्दुल रहमान** का 'सनेस रासक' धर्म निरपेक्ष लौकिक विरह की रचना है। **विद्यापति** की 'कीर्तिलता' अपने समय का सामाजिक एवं राजनीतिक परिदृश्य प्रखरता से उठाती है। बौद्धों के चर्यापदों के अलावा उनका 'दोहा कोश' (संपा-राहुल सांकृत्यायन) अपभ्रंश की ऐसी रचना है जिसने भारतीय भाषाओं के संत साहित्य को बहुत प्रभावित किया है। अपभ्रंश साहित्य में जन जीवन की प्रधानता है; उसमें

समकालीन संस्कृति और जीवन का जो चित्र मिलता है, वह संस्कृत की यथार्थवादी परम्परा को आगे बढ़ाता है। पालि और प्राकृत की तरह अपभ्रंश में भी दार्शनिक विचारों की प्रधानता है, परन्तु इनमें शुष्कता और काव्यत्वहीनता नहीं है, बल्कि कई जगह लगता है कि धर्म, मात्र माध्यम रह गया है जिसके जरिए कवि जन-संवेदन, जनाकांक्षा और प्रकृति-संश्लिष्ट जीवन का काव्यात्मक चित्र खींच रहा है।

आधुनिक भारतीय भाषा-साहित्य

दसवीं शती के लगभग अपभ्रंश और द्राविड़ भाषा-समूह से प्रायः उन सभी भाषाओं का जन्म हुआ, जो भारत के विभिन्न भाषा-भाषी समाजों में आज प्रचलित हैं। इनमें प्रमुख हैं—हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती, असमिया, उड़िया, पंजाबी, उर्दू, सिंधी, तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड और कश्मीरी। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद यद्यपि हिन्दी, भारत की राष्ट्रभाषा बनी, परंतु उक्त समस्त भाषाओं में रचित साहित्य इस देश का राष्ट्रीय साहित्य है, जो पिछले एक हज़ार वर्षों से, तमाम ऊपरी भिन्नताओं के बावजूद भारतीय जनता को किन्हीं अदृश्य धागों में कस कर बांधे हुए है।

संभवतः किसी विदेशी व्यक्ति को यह जानकर आश्चर्य होगा कि कैसे इतने बड़े राष्ट्र में, देश के एक कोने से लगाई गई किसी कवि की आवाज़ को ठीक दूसरे सिरे पर बैठे कवि ने तुरंत सुना है और कैसे अपने स्वर के तार उससे जोड़ दिए हैं। भारतीय भाषाओं का एक हज़ार साल का इतिहास साक्षी है कि इस पूरे देश में साहित्य का ऐसा आर्केस्ट्रा बजता रहा है, जिसमें सभी वाद्य एक ही राग का पोषण करते हैं। सभी भाषाओं में लगभग एक ही समय में एक जैसी प्रवृत्ति ने जन्म लिया है और एक जैसी प्रवृत्ति को उत्तराधिकार सौंपा है। वीर-साहित्य सी प्रवृत्ति हो या वैष्णव भक्तिधारा; प्रेम और शृंगार की अभिव्यक्ति हो या स्वाधीनता की चेतना; स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति हो या प्रगतिशील अवधारणा—सभी भाषाओं में लगभग समानांतर प्रवाहित हुई है। इसीलिए एक लेखक का यह कहना उचित जान पड़ता है कि 'भारतीय साहित्य अनेक भाषाओं में लिखा एक विचार है।' (Indian literature is one thought Written in many languages.)

बुनियादी कारण यह है कि भारत 'एक हृदय' है। उसकी समस्त आधुनिक भाषाओं ने पारंपरिक भारतीय साहित्य से एक-साथ प्रभाव और प्रेरणा ग्रहण की है। वेद, उपनिषद, दर्शन, स्मृति, पुराण, रामायण महाभारत, कालिदास, भवभूति, शूद्रक, जयदेव, आचार्य भरत, अभिनव गुप्त, आनंदवर्द्धन, मम्मट, अश्वघोष, स्वयंभू आदि समस्त भारतीय रचनाकारों की प्रेरणा भारतीय साहित्य और जीवन की अंतःशक्ति है जो उसे कभी बिखरने नहीं देती। इसी आंतरिक शक्ति ने हर बार टूटने के कगार पर देश को एक सम्पूर्ण इकाई के रूप में, एक साथ खड़ा किया है।

आधुनिक भारतीय भाषाओं ने अगणित श्रेष्ठ रचनाओं के द्वारा साहित्य की श्री वृद्धि की है। लगभग हर भाषा ने ऐसे महान् और विश्वस्तरीय रचनाकार दिए हैं, जिनके होने से कोई भी समाज और देश गर्व कर सकता है। हिन्दी के चंदबरदाई, तुलसी, जायसी, सूर, कबीर, बिहारी भारतेन्दु, प्रेमचन्द, रामचन्द्र शुक्ल, राहुल सांकृत्यायन, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, निराला, पंत, दिनकर, मुक्तिबोध, अज्ञेय, यशपाल, जैनेन्द्र आदि; मराठी के ज्ञानदेव, एकनाथ,

तुकाराम, केशवसुत, मर्ढेकर; **पंजाबी** के वारिसशाह, नानक, अतरसिंह, अमृता प्रीतम; **उर्दू** के ग़ालिब, मीर, हाली, मंटो, इकबाल, फ़िराक, जोश; **तमिल** के आलवार संत, सुब्रह्मण्यम भारती, भारती दासन; **तेलुगु** के त्याग राजा, रंगनाथ, श्री श्री, वीरेश लिंगम; **गुजराती** के नरसी मेहन नर्मद, उमाशंकर जोशी, क० मा० मुंशी; **बंगला** के चंडीदास, कृतिवास, बंकिम, रवीन्द्र, काजी नजरुल इस्लाम, ताराशंकर, बंद्योपाध्याय, शरत् चंद्र, माइकेल मधुसूदन दत्त, विष्णु दे; **असमिया** के शंकरदेव, आनंदराम फुकन; **उड़िया** के बंधुदास, फ़कीर मोहम्मद; **कन्नड़** के श्रीकांतय्या बेंद्रे, गोकाक; **मलयालम** के वल्लातोल, शंकर कुरूप आदि असंख्य श्रेष्ठ रचनाकारों ने युगानुरूप मूल्यवान साहित्य रचकर विभिन्न भाषाओं को समृद्ध किया है। उपर्युक्त सूची तो बहुत अधूरी और नाममात्र की है और सिर्फ़ संकेत भर करने के लिए दी गई है। भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य कितना वृहत् गंभीर और महान् है, इसे संक्षेप में कहने के लिए, डॉ० नगेन्द्र का निम्नांकित उद्धरण देकर मैं इस आलेख को समाप्त करना चाहूंगा :

"यदि हम भारत की केवल आधुनिक भाषाओं की साहित्य सम्पदा को ही एक स्थान पर रखें तो सम्पूर्ण योरप के साहित्य को एक स्थान पर एकत्र कर देने पर ही वह इसके तुल्य हो सकेगा। यदि हम इसके साथ वैदिक संस्कृत, पाली, प्राकृतों और अपभ्रंशों के साहित्यिक खजाने को भी जोड़ दें तो यह आकार हमारी कल्पना से भी बड़ा होगा। ज्ञान का यह अगम लहराता समुद्र हिन्द महासागर से अधिक गहरा, भारत के भौगौलिक आयाम से अधिक बड़ा, हिमालय के पर्वत शृंगों से ऊंचा और आत्मा की अवधारणा से भी सूक्ष्म होगा।" (इंडियन लिट्रेचर)

[82/101, तुलसी नगर, भोपाल—462005]

गुथेरा*

□ गुगी वा थियोंगो

[अफ्रीका के प्रसिद्ध लेखक गुगी वा थियोंगो के हाल ही में प्रकाशित और कीनिया में प्रतिबंधित उपन्यास 'मातीगारी' का यह एक अंश है। सन् 1938 में कीनिया में जन्मे इस कथाकार के अब तक छः उपन्यास, तीन कहानी-संग्रह तथा दो नाटक प्रकाशित हुए हैं। 1977 में गुगी मुरी के साथ संयुक्त रूप से लिखे गए नाटक 'आई विल मैरी वैन आई वांट' पर सरकार द्वारा प्रतिबंध लगाए जाने पर गिरफ्तार भी हुए।]

जब वह इस सोच में उलझा हुआ था कि उसे क्या करना चाहिए, उसने देखा कि एक जवान औरत ने बार में प्रवेश किया और सीधे वहां बैठी हुई औरतों के पास चली गई। खिलखिलाते और हंसते हुए उसने उन औरतों से हाथ मिलाया और एक-दूसरे की हथेलियों पर ताली दी।

"आह ! गुथेरा," सभी औरतों ने एक साथ उसका स्वागत किया। "क्या खबर है ?"

"कोई खास नहीं," उसने मुस्कुराते हुए जवाब दिया, "बस इन पुलिसवालों से बचती हुई घूम रही हूं।"

काउंटर के पीछे बैठी हुई औरत ने रेडियो की आवाज़ धीमी कर दी ताकि गुथेरा की बात को ध्यान से सुन सके।

"क्यों ? क्या तुमने कुछ चुराया है ?"

"नहीं। बस एक पुलिसवाला मेरे पीछे पड़ा हुआ है। वो मेरा पीछा ऐसे कर रहा है मानो मैं किसी कुत्ते को ढूंढ़ती हुई कोई गर्मायी हुई कुतिया हूं। उसे शर्म आनी चाहिए—मुझे रोकने के लिए हरामी सीटी बजा रहा था। कौन बेवकूफ होगी जो पुलिसवाले से गप्पें मारने के लिए खड़ी होगी, और वो भी दिन के उजाले में ? निश्चय ही गुथेरा ऐसा नहीं कर सकती !"

कितनी खूबसूरत औरत है, मातीगारी ने सोचा, जिसके दूध की तरह सफेद चमकते हुए दांत हैं, बाल इतने काले और कोमल हैं मानो इन्हें हमेशा सबसे बढ़िया तेल लगाकर इनकी देखभाल की गई हो। यह औरत न बहुत छोटी है न बहुत लंबी; न बहुत मोटी है न बहुत पतली। पहने हुए कपड़ों में उसका गठा हुआ शरीर देखकर ऐसा लगता है, मानो इन कपड़ों में ही इस शरीर को गढ़ा गया हो। कंधों पर फूलों के नमूने वाला लासो (गाऊन) इस ढंग से पहना हुआ है कि उसके तहदार पल्ले उसके कंधों और वक्ष पर हल्के-हल्के लहरा रहे हैं। उस औरत पर से

*आत्माराम एंड संस से शीघ्र प्रकाश्य।

नज़रें हटाना मुश्किल था। इतनी खूबसूरत औरत इस गंदी बार में क्या कर रही है ?

औरत ज़ोर से खिलखिला कर हंसी, "पुलिसवाले के साथ क्या दिक्कत है ? क्या तुम्हें वह पसंद नहीं ? पैसा पैसा होता है, पता है !"

"पुलिसवालों के पैसों में मुझे खून की बू आती है", कहते हुए वह घूमी और पहली बार उसका ध्यान मातीगारी और मुरुउकी की ओर गया। इसकी अपेक्षा मैं किसी बिलकुल अजनबी से, जैसे कि वहाँ बैठे हुए उस आदमी से मांग कर बीयर पीना अधिक पसन्द करूंगी।" गुथेरा मातीगारी की ओर गयी और बिना किसी झिझक के उसकी गोद में बैठ गई और अपनी बाहें उसके गले में डालकर कातिल निगाहों से उसकी आंखों में देखा :

"ऐ—बाबू, तुम मुझे इस तरह से क्यूं देख रहे हो ? तुम तो अपना खाना खाना और बीयर पीना भी भूल गए। मैं तो अक्सर लेज़र (बीयर) पीती हूं। तुम खाओ···कंजूसी मत करो ! मेरे पीने के लिए तुम कुछ नहीं मंगवाओगे ? अच्छा, मुझसे थोड़ी देर का मज़ा लूटने के लिए तुम कितने पैसे दोगे। मज़ा लूटने के लिए बड़े पैसे लगते हैं···पता है तुम्हें। किंतु महीने के इन दिनों में अक्सर रेट गिर जाता है। हम तो उधार भी कर लेती हैं। तुम महीने के अंत में दे देना। लेकिन यह इसी शर्त पर होगा अगर तुम कहीं नौकरी करते हो। तुम नौकरी करते हो क्या ? कहीं तुम उन किसानों में से तो नहीं हो जो अपनी इकलौती गाय का दूध बेच कर या एक-मात्र एकड़ ज़मीन में पैदा हुई कॉफी बेचकर कुछ पैसे आने का इंतज़ार करते रहते हैं। कहीं तुम उस तरह के लोगों में से तो नहीं हो जो घात लगाकर अपनी पत्नियों से वे सारे पैसे छीन लेते हैं, जो वे बाज़ार में माल-मत्ता बेचकर लाती हैं। कोई फ़िक्र नहीं, हमें इस बात से कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि तुम कैसे और कहां से पैसे कमाते हो। किंतु हम हमेशा भाग्यशाली नहीं होतीं। जैसे, यदि फैक्टरी में हड़ताल हो गई, तो मुझे समझ नहीं आता कि हमारी दाल-रोटी कैसे चलेगी। हो सकता है भाग्य हमारा साथ दे और वे लोग हमारे पास आएँ जो अपनी ज़मीन का छोटा-सा टुकड़ा बेच देते हैं। क्या तुम अपनी पत्नी की ज़मीन या उसका घर बेचोगे ?"

मातीगारी को अपना मुंह खोलने का मौका मिला तो उसने कहा, "तुम देख नहीं रही हो कि मैं तुम्हारे बाप की उम्र का हूं। यहाँ इस कुर्सी पर बैठो।" धीरे-से उसे अपने से दूर हटाते हुए उसने कहा।

वह मातीगारी और मुरूउकी के बीच में सिमटकर बैठ गई।

"तुम कहां के रहने वाले हो, बाबू ? क्या तुम चाँद के निवासी हो या शायद अंतरिक्ष के ? या तुम वैसे ही नखरेबाजी कर रहे हो ? आओ मैं तुम्हें कुछ बताती हूं। इन दिनों इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि कोई तुम्हारा बाप है या बेटा, या कोई तुम्हारा भाई है या बहन। सबसे अहम चीज़ है पैसा। यदि इस जैसा लड़का भी जेब में पैसे डालकर मेरे पास आए तो मैं उसे वह मज़ा दूंगी जो उसने कभी सपने में भी नहीं सोचा होगा। क्यों—बच्चे, क्या ख्याल है तुम्हारा ! सिर्फ पुलिसवालों के साथ मैंने कुछ भी न करने की कसम खाई है। क्या तुम पुलिस वाले हो ? तुम्हारा नाम क्या है ?"

इससे पहले कि मातीगारी जवाब देता गुथेरा ने खिड़की से बाहर देखा—वहां उसे कुत्ते के साथ दो पुलिसवाले दिखाई पड़े। यह देखते ही वह उछल पड़ी।

"हे भगवान ! ये लकड़बग्घे यहीं आ रहे हैं। मैं नहीं चाहती कि ये मूर्ख मेरे साथ आकर कोई मूर्खता करें। लेकिन तुम बैठे रहो बाबू, मैं अभी लौटकर आती हूं और तब तुम मुझे कुछ

पिलाओगे।"

गुथेरा दरवाज़े पर पहुंचकर ओझल हो गई।

मातीगारी अपनी ठोड़ी पकड़कर, उदास और गहरी सोच में डूब गया। वह सोचने लगा—यह क्या हो गया है। उसके चेहरे पर बुढ़ापा फिर लौट आया और चेहरे पर झुर्रियां और गहरी नज़र आने लगीं। कैसे यह सब कुछ बदल गया। आखिर यह दुनिया किस ओर जा रही है ?

काउंटर पर बैठी हुई महिलाएं अब गुथेरा के बारे में बातें कर रही थीं—यह गुथेरा इतनी बातूनी है—पता नहीं पुलिसवालों से इसे इतनी चिढ़ क्यों है ?·· पैसा तो किसी का भी हो, वह नहीं काटता।

"यदि मैं गुथेरा होती तो मैं उसे इस तरह नचाती कि अंत में उसे अपनी यूनिफार्म भी गिरवी रखनी पड़ती।" समय बिताने के लिए वे इसी तरह की छोटी-छोटी बातें करती रहीं। अचानक उन्होंने खून सुखा देने वाली कुत्ते की खतरनाक गुर्राहट सुनी, और उसके तुरन्त बाद एक औरत की कंपकंपाती हुई चीख की आवाज़ आयी। सभी वेटरेस बाहर की ओर भागीं और उनके पीछे मुरूउकी भी। कुत्ता लगातार गुर्रा रहा था। औरत की चीख सिर्फ आतंक से भरी हुई थी। मुरूउकी सिर से पैर तक कांपते हुए बार में वापिस आया।

"यह वही औरत है···।" उसने कहा।

"क्या हुआ ?"

"वे कुत्ते को उस पर छोड़ रहे हैं।"

"वे कौन ?"

"वे पुलिसवाले।"

मातीगारी अपनी कुर्सी से गोली की तरह उछला और बाहर भागा। मुरूउकी उसके पीछे भागा। क्या भयानक दृश्य था ?

गुथेरा के इर्द-गिर्द लोगों की भीड़ जमा थी और वे पुलिसवालों द्वारा औरत पर किए जा रहे अत्याचार और आतंक को चुपचाप देख रही थी। वह जमीन पर झुकी हुई थी। कुत्ता जैसे ही उस पर लपकता, हर बार उसकी थूथन गुथेरा की आंखों के बिलकुल करीब आ जाती और पुलिसवाला उसकी थूथन को पीछे हटा देता। गुथेरा का ड्रेसिंग गाऊन ज़मीन पर पड़ा हुआ था। हर बार वह छूटने की कोशिश में खड़े होने का जैसे ही प्रयास करती, कुत्ता भौंकते और गुर्राते हुए, उस पर उछल पड़ता, मानो उसे खून की गंध मिल गयी हो। कुछ लोगों को यह दृश्य बहुत मजेदार लग रहा था और वे खिलखिलाकर हंस रहे थे।

उसकी पेशाब की धार बह निकली; उसके चेहरे पर मौत की छाया मंडरा रही थी।

पीड़ा और गुस्से की एक तेज़ लहर से मातीगारी झनझना उठा। उसका हाथ अपने आप वैसे ही कमर पर चला गया जैसे पर्वतों में सेटलर विलियम के साथ वर्षों तक हुए संघर्षों में चला जाता था। किंतु कमर में कुछ नहीं था। कोई बंदूक नहीं थी। उसे ख्याल आया कि उसने अब शांति की पेटी बांधी हुई है। किंतु वह बहुत क्रोधित था। आदमी होने का क्या लाभ यदि वह अपने बच्चों की रक्षा भी न कर सके ? फिर भी, वह अपने क्रोध को खामोशी में लपेटकर नहीं रख सका। हमेशा से उसका यह विचार रहा था कि आदमी को किन्हीं भी चीजों पर गुस्सा

करने का कोई अधिकार नहीं है यदि उन चीज़ों में परिवर्तन लाने की उसकी कोई मंशा न हो। वह भीड़ की ओर मुड़ा और क्रोध से चिल्लाया :

"यहां क्या हो रहा है ? यहां खड़े होकर सिर हिलाते हुए क्या तुम अपने बच्चों को गंद खिलाने पर आमादा हो ? तुम लोग यह देखते हुए भी कि हमारे देश की इस सुंदर लड़की को ये जानवर कैसे फाड़कर खा रहे हैं, यह सब कैसे सहन कर रहे हो ? यह सब जो हो रहा है, इसमें मज़ाक की कौन-सी बात है ! अपने मुंह सिलकर इस भय में तुम लोग क्यों जी रहे हो ? यह बात याद रखो कि जिस देश के लोग भयभीत होकर रहते हैं, वह देश दुःखों का घर बन जाता है ।"

सब लोगों की नज़रें मातीगारी पर जम गयीं ।

भीड़ बीच में से छंटने लगी—मानो इस पागल को गुज़रने का रास्ता दे रही हो। मातीगारी ने वहीं खड़े-खड़े पुलिसवाले की ओर उंगली उठाकर कहा, "उसे अकेला छोड़ दो !"

"तुम्हें कानून को अपने हाथ में लेने की इजाज़त किसने दी ?" कुत्ते को थामने वाले पुलिसवाले ने कहा ।

"यह कैसा कानून है जो पुलिस को एक अबला औरत पर अत्याचार करने की इजाज़त देता है ?"

पुलिसवाले थोड़ा-सा घबरा गए क्यूंकि वे नहीं जानते थे कि यह आदमी कौन है जो इतने आत्मविश्वास के साथ बोल रहा है ।

"क्या तुम जानते हो कि इस औरत ने पुलिस की आज्ञा का उल्लंघन किया है ? हम यहां शांति और व्यवस्था बनाए रखने के लिए हैं," कुत्ते को थामने वाले पुलिस वाले ने कहा ।

"शांति और व्यवस्था—इसलिए कि चोरी करने और डाका डालने में कोई परेशानी न हो ? तुम यह क्यों नहीं कहते कि इसने तुम्हारे लिए समर्पण नहीं किया, इसलिए तुम इस पर यह अत्याचार कर रहे हो ?"

"क्या तुम यह चाहते हो कि यह कुत्ता मैं तुम पर छोड़ दूं ?" पुलिस वाले ने धमकाने वाले लहजे में जोर से कहा—क्योंकि वह नंगा हो चुका था । "क्या तुम चाहते हो कि यह कुत्ता तुम्हें फाड़कर तुम्हारे चीथड़े-चीथड़े कर दे ?"

"ज़रा कोशिश करो, तुम्हें पता चल जाएगा तुम किससे उलझ रहे हो ।"

"कौन हो तुम ?" दूसरे पुलिस वाले ने पूछा ।

"मातीगारी मा नज़ीरूंगी ।"

सत्य के साहस ने उसे एक बार फिर रूपांतरित कर दिया । उसके चेहरे से उम्र के सारे निशान मिट गए, और वह एकदम जवान दिखाई पड़ने लगा ।

पहले पुलिस वाले ने ऐसे हरकत की मानो वह कुत्ते को उस पर छोड़ रहा हो, किंतु दूसरे ने उसे बाज़ू से पकड़कर रोक दिया और उसके कान में फुसफुसाया, "आओ चलें । क्या तुमने कभी किसी का ऐसा नाम सुना है, जो इसका है ? इसके अलावा, साधारण कपड़ों में यह कोई बहुत बड़ा आदमी भी हो सकता है ?"

"तुम पागल हो", कुत्ते वाले पुलिस वाले ने मातीगारी से कहा । "और तुम (गुथेरा की ओर देखकर)"तुम्हें शांति और व्यवस्था बनाए रखने वालों की आज्ञा का पालन करना सीखना चाहिए ।"

यह कहकर पुलिस वाले शापिंग सेंटर की बहुमंजिल इमारतों की ओर चले गए।

मातीगारी उस औरत के पास गया और उसके कंधे पर अपना हाथ रख दिया।

"उठो···खड़े हो जाओ···माँ" उसने सिर्फ इतना कहा।

गुथेरा पत्ते की तरह काँपने लगी। वह धीरे-धीरे खड़ी हुई, अपना लासो उठाया और बिना सोचे-समझे चलने लगी। अजीबोगरीब विचारों से उसका दिमाग भारी हो गया।

इस घटना के बारे में बातचीत करते हुए लोगों की भीड़ तितर-बितर होने लगी। वे पुलिस, कुत्ता, गुथेरा और मातीगारी के बारे में बातचीत कर रहे थे। आपस में सभी पूछ रहे थे—यह मातीगारी कौन है ?

10

मातीगारी और मुरूउकी वापिस कार में चले गए। सभी महिलाएं इस घटना के बारे में ही बातें कर रही थीं। ऐसी घटना इस इलाके में कभी नहीं घटी थी। एक वेटरेस ने आकर मातीगारी की बोतल का ढक्कन खोला। "मुरूउकी के लिए एक सॉफ्ट ड्रिंक ले आओ", उसने वेटरेस से कहा।

उसने अपने खाने और बीयर को बिलकुल हाथ नहीं लगाया, और कहीं दूर शून्य में देखता रहा।

गुथेरा बार में वापिस आई। उसने नहा-धोकर अपने कपड़े और लासो बदल लिए थे। सभी वेटरेस उसकी ओर लपकीं और उसे आलिंगन में भर लिया, और उसके साथ हुई दुर्घटना के बारे में शोक प्रकट करने लगीं। उसने अपने आपको उनके आलिंगन से छुड़ाया और मातीगारी के पास आ गई और सिर झुकाकर खड़ी हो गई। जब उसने कुछ बोलने की कोशिश की तो काँपती हुई आवाज़ में ही बोल पाई :

"मुझे नहीं पता कि तुम कौन हो—किंतु मैं तुमसे उन सब बातों के लिए मुआफी माँगती हूं, जो मैंने तुमसे कही हैं। जो तुमने अभी मेरे लिए किया है, उसे मैं जीवन भर नहीं भूल सकती।"

"बैठ जाओ", मातीगारी ने उससे कहा, "गर्मी बहुत है, पीने के लिए कुछ ठंडा मंगवा लो।"

गुथेरा मातीगारी और मुरूउकी के सामने बैठ गई। उसने एक बीयर का आर्डर दे दिया। मुरूउकी ने एक की जगह दो बीयर लाने के लिए कहा। वेटरेस मातीगारी के लिए भी एक बीयर ले आई।

"मैंने केवल एक बीयर के लिए कहा था", फिर भी, रख दो यहां। शायद कोई और पीने वाला मिल जाए," उसने कहा।

वे चुपचाप अपनी-अपनी बीयर पीते रहे। यहां तक कि वेटरेस भी बहुत धीरे-धीरे बातें कर रही थीं।

"पुलिस और तुम्हारे बीच में यह क्या चक्कर है," उसने गुथेरा से पूछा।

मुरूउकी के सामने बोलने में पहले उसने कुछ झिझक महसूस की। किंतु बाद में उसने निश्चय कर लिया कि उसे सब कुछ बता देना चाहिए।

"मैंने इसके बारे में इससे पहले कभी किसी से कोई बात नहीं की।" उसने कहना शुरू किया, "लेकिन तुम्हीं सोचो···मैं इस बार में क्या कर रही हूं ! मैं तुम्हें शुरू से बताती हूं।"

"बहुत समय पहले की बात है, एक कुंआरी लड़की थी। उसकी मां की मृत्यु बचपन में ही हो गई थी। इस लड़की का और इसके भाई-बहनों का लालन-पालन इनके पिता ने किया। जो ईसाई था—और चर्च का उच्चाधिकारी भी। स्वाभाविक रूप से लड़की चर्च में ही बड़ी हुई। लड़की स्कॉटलैंड के चर्च में विश्वास रखती थी और उसका पिता स्वतंत्र चर्च में। किंतु इससे उसके पिता को कोई आपत्ति नहीं थी। उसका मानना था कि मुख्य बात ईसु और उसके आदेशों में विश्वास रखना है। और इस बात से कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि आप किस चर्च में विश्वास रखते हैं और वह चर्च दूसरे चर्चों से किन बातों में भिन्न है। वास्तविक चर्च तो लोगों के दिलों में होता है, बाकी सब तो पत्थर की इमारतें हैं। वह लड़की दो लोगों से बहुत प्यार करती थी। एक तो उस परमपिता से, जिसने उसे जीवन दिया; और दूसरे उस सांसारिक पिता से जिसने उसे इतने प्यार से पाल-पोसकर बड़ा किया। उसके सांसारिक पिता को वास्तव में बच्चों से बहुत प्यार था। वह तब तक स्वयं भोजन नहीं करता जब तक कि सारे बच्चे पेट भरकर खाना नहीं खा लेते। उसके मन में किसी बच्चे के प्रति कोई भेदभाव नहीं था। उसकी नज़रों में सभी बच्चे प्रभु की संतान थे, उसकी सृष्टि थे और वे सब बराबर थे। लड़की हमेशा चर्च जाती और बिला नागा प्रार्थना किया करती थी। चर्च में दसों धर्मादेशों का पाठ होता था और उसे भी इन्हें पढ़ाया जाता था। जब वह बड़ी हुई तो इन्हें अपने आप पढ़ने लगी। उसे इन्हें हमेशा और हर जगह अपने साथ रखने के लिए कहा गया।

तू मेरे अतिरिक्त किसी और को परमेश्वर न मानना।
तू अपने लिए किसी प्राणी की मूर्ति या आकृति न बनाना।
तू व्यर्थ में अपने परमेश्वर का नाम न लेना।
विश्राम दिवस को पवित्र मानने के लिए स्मरण रखना···
अपने माता-पिता का आदर कर···
तू हत्या न करना।
तू व्यभिचार न करना।
तू चोरी न करना।
तू अपने पड़ोसी के विरुद्ध झूठी साक्षी न देना।
तू अपने पड़ोसी की वस्तुओं का लालच न करना···

उसकी ज़िंदगी का उद्देश्य और लक्ष्य था कभी कोई बुरा काम न करना। वह केवल दूसरों का भला ही करती थीं। वह केवल सत्य और न्याय के रास्ते पर ही चलना चाहती थी। उसने मन लगाकर प्रभु की इतनी पूजा की कि उसे यह महसूस होने लगा कि उसकी पवित्रता के पंख उग आए हैं और वह सीधे स्वर्ग की उड़ान भर सकती है। तब युद्ध आरंभ हो गया। लोग आपस में बंट गए। इनमें से कुछ देशभक्त थे और कुछ सब कुछ बेचकर खा जाने वाले गद्दार। ऐसा लगा मानो दुनिया ऊपर-नीचे हो रही है। बच्चे अपने माँ-बाप के और माँ-बाप अपने बच्चों के खिलाफ हो गए। भाई-बहन एक-दूसरे की जान लेने की कसमें खाने लगे। किंतु लड़की ने सिर्फ़ अपने दो पिताओं की ओर ही ध्यान लगाए रखा—परमपिता की ओर और सांसारिक पिता की ओर। वह उनकी जितनी सेवा कर सकती थी, उसने की। उसका पिता रोज़ाना चर्च जाता, किंतु वह देश-भक्त भी था। लड़की को यह बात बिलकुल पता नहीं थी, हालांकि उसका पिता प्राय: उससे कहा करता : वे दस धर्मोपदेश बहुत अच्छे हैं किंतु वे सब एक ही धर्मोपदेश में समा जाते हैं और वह

धर्मोपदेश है—प्यार। और इससे महान और बड़ा प्यार और कोई नहीं होता कि व्यक्ति किसी दूसरे के लिए अपनी जान दे दे। सोचो, लोग अपनी जान, एक-दूसरे के लिए, अपने देश के लिए कुर्बान करने के लिए तैयार हैं। एक दिन, उसके सांसारिक पिता को गिरफ्तार कर लिया गया। वह उसे जेल में देखने गई। वह पुलिस सुपरिंटेंडेंट से यह पूछने गई कि उसके पिता को क्यूं गिरफ्तार किया गया है। उसने उस लड़की को बताया : "तुम्हारे पिता को बाईबल में बंदूक की गोलियाँ ले जाते हुए पकड़ा गया है।" लड़की ने इस आरोप को झूठा बताया। "जाकर अपने वाप से पूछो" उन्होंने कहा। वे उसे हाथों में हथकड़ी पहनाए हुए लेकर आए। जब उसने अपने पिता को ऐसी स्थिति में देखा, उसने रोना शुरू कर दिया। पुलिस ऑफीसर ने उन्हें कुछ देर के लिए अकेला छोड़ दिया। "क्या यह सच है ?" लड़की ने पिता से पूछा। हाँ, इससे महान प्रेम और कोई नहीं होता कि स्त्री और पुरुष अपने देश के लिए अपनी जान कुर्बान करने पर्वतों और जंगलों में चले जाएं। ईसा के सभी धर्मोपदेश में से यह सबसे उच्च धर्मोदेश है। और मुहम्मद से लेकर बुद्ध तक यानि कि धरती पर जितने भी धर्म हैं, उन सभी का यह सबसे महान धर्मोपदेश है। यह सुनकर लड़की को बड़ा धक्का लगा और थोड़ी देर के लिए वह गूंगी हो गई। किसी के पास बंदूक की गोलियों के मिलने का अर्थ था—मौत की सजा। वे उसके पिता को वापिस कोठरी में ले गए। सुपरिंटेंडेंट धीरे-धीरे मुस्कुराता हुआ बाहर आया, और कहा, "मेरे से बड़े अधिकारियों को अभी इस बात की सूचना नहीं है, हम इस मामले को अभी और यहीं पर निपटा सकते हैं। तुम मुझे खुश कर दो, और मैं तुम्हारे बाप को छोड़ दूंगा।" वह अविवाहित कुंआरी लड़की चुप रही। सुपरिंटेंडेंट ने आगे कहा : "तुम अपने बाप की ज़िंदगी को अपनी टांगों में लिए बैठी हो।"

लड़की घर वापिस गई और घुटने टेककर परम पिता से प्रार्थना करने लगी कि ऐसी स्थिति में वह उसे राह दिखाए। अगली सुबह, वह पादरी के पास गई। उसने बाईबल खोली और उसे दस धर्मोपदेश पढ़कर सुनाए। तुम मेरे सिवा किसी को प्रभु नहीं मानोगे। तुम किसी की हत्या नहीं करोगे। व्यभिचार में नही फंसोगे। और इसी तरह के अन्य धर्मोपदेश, जैसे—अपने मां-बाप की इज्ज़त करोगे। वास्तविक परीक्षा यही थी कि तुम व्यभिचार नहीं करोगे; और माँ-बाप की इज्ज़त करोगे। वे दोनों घुटने टेककर प्रार्थना करने लगे। पादरी ने परमपिता से उस लड़की को ऐसा साहस प्रदान करने की प्रार्थना की जिससे कि वह हमेशा नैतिकता और सदाचार के मार्ग पर चल सके। अगले दिन, लड़की पुलिस स्टेशन वापिस गई। सुपरिंटेंडेंट ने उसे फिर कहा, "तुम्हारा बाप उन लोगों में से है जो अपने आपको देशभक्त कहते हैं। वह आतंकवादियों को गोलियां उपलब्ध कराकर उनकी मदद कर रहा था। बिना लाइसेंस के किसी के पास बंदूक की गोलियों के पाए जाने पर उसे मौत की सजा मिलती है। किंतु मैं तुम्हारी मदद करूंगा। इस पुलिस स्टेशन के बाहर इस बात के बारे में कोई नहीं जानता। तुम मुझे खुश करके अपने बाप की जिंदगी बचा सकती हो।" लड़की ने उत्तर दिया, "मैं इस धरती और स्वर्ग को बनाने वाले अपने पिता को कभी नहीं छोड़ूंगी।" उसने वह धर्मोपदेश पढ़ा, "तुम कभी व्यभिचार नहीं करोगे।" पुलिस अफसर ने उससे कहा, "तब तुम अपने पिता को अंतिम प्रणाम कर लो।" उसका सांसारिक पिता मार दिया गया। उसकी ज़मीन उपनिवेशी सरकार ने जब्त कर ली, और छोटे भाई-बहनों की देखभाल करने की जिम्मेवारी लड़की पर आन पड़ी। उस पर कठिनाइयों के पहाड़ टूट पड़े। गरीबी'''कपड़े चीथड़ों में बदल गए और खाने को एक दाना भी नही

रहा। कुछ भी नहीं। भाई-बहन अपने बाप को याद करके रोने लगे—"हमारा पिता कहां है ? हम क्या खाएं ?" लड़की बस खाली आंखों से उन्हें घूरती—काश ! उसने अपने बाप की ज़िंदगी बचा ली होती, यह विचार उसे यातना देने लगता। वेदना से भरी हुई बच्चों की रुलाई उसे बीच में से चीर रही थी। और अब मैं अपने भाई-बहनों को भूख से बिलबिलाकर मौत के मुंह में जाते हुए देखूंगी ? क्या मैं इनके खून से अपने हाथ रंगे जाते हुए देखूंगी ? वह बार-बार विचारों के जाल में उलझती रही। किंतु उसके परमपिता ने उसके सवालों का कोई जवाब नहीं दिया। बाईबल में सिर्फ इतना ही लिखा था, "तुम चोरी नहीं करोगे; तुम अपने पड़ोसी के सामान को लालची निगाहों से नहीं देखोगे; तुम व्यभिचार नहीं करोगे।" और भूख के बारे में ? कोई जवाब नहीं। प्यास के बारे में ? फिर, कोई जवाब नहीं। और नंगेपन के बारे में ? चुप। और घर पर, बच्चे अभी भी चिल्ला रहे थे, "हम क्या खाएं ? हमारा पिता कब वापिस आएगा ? वो कहां चला गया है ?"

लड़की पादरी के पास फिर गई। उसने अपने चर्च के अन्य सभी ईसाइयों से निवेदन किया। किंतु जब उन्होंने उसे समीप आते देखा तो वे सब भाग गए। एक आतंकवादी की लड़की ? वह चर्च में जाती, और हर बार निराश वापिस लौटती।

एक दिन लड़की ने गलियों में निकलने का फैसला किया। उस दिन, वह आटे की थैली के साथ घर वापिस लौटी। मैं तुम्हें यह बताती हूँ : जिस दिन से लड़की ने गलियों में निकलने का फैसला किया, वह अपने भाई-बहनों के लिए रोटी और कपड़ों का इंतज़ाम करने योग्य हो गई। किंतु उसे इतनी कमायी नहीं होती थी कि वह उन्हें स्कूल भेज सके, या ऐसी जगह भेज सके जहां वे कुछ तकनीकी काम सीख सकें। क्या ये वही बच्चे नहीं हैं जिन्हें मैं बार में, या कूड़े के ढेर में से गंदी चीजें उठाकर खाते हुए या गलियों में टूरिस्टों से भीख मांगते हुए देखती हूँ ? मेरी कहानी का बस यही अंत है। किंतु मैंने अभी तुम्हारे सवाल का जवाब नहीं दिया है। जिस रात लड़की ने गलियों में निकलना शुरू किया, उसने कसम खायी : यद्यपि मुसीबतों के कारण मुझे नेक रास्ते से परे हटना पड़ा है और मैं आदमियों का शिकार करने लगी हूँ, फिर भी मैं कभी भी, किसी पुलिसवाले के साथ नहीं सोऊंगी। मैं अजनबी लोगों से, चोरों से और यहां तक कि कातिलों से पैसा ले लूंगी, किंतु मैं इन पुलिसवालों के लिए कभी नहीं··· । ये विश्वासघाती —इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि वे मुझे इस काम के लिए कितने पैसे देने को तैयार हैं : यह मेरा ग्यारहवां धर्मोपदेश है।"

गुथेरा की इतनी लंबी कहानी सुनने के बाद पल भर की चुप्पी छा गई जिसे तोड़ते हुए मातीगारी ने कहा, "दो तरह के विश्वासी होते हैं। एक वे जो अपने देश को प्यार करते हैं, और एक वे जो इसे बेच डालते हैं। सिपाही भी दो तरह के होते हैं। कुछ लोगों की रक्षा करते हैं और कुछ उन पर अत्याचार करते हैं।"

"मैंने इनमें से कभी किसी एक को भी लोगों की रक्षा करते हुए नहीं देखा," गुथेरा ने कहा।

"और तुम्हारे पिता ? कितने महान देशभक्त थे वे। लोगों के वास्तविक सेवक। धरती पर दो तरह के लोग होते हैं; विश्वासघाती, जो देश को बेच डालते हैं, और देशभक्त; जो लोगों की सेवा करते हैं।"

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मातीगारी मा नजीरूंगी"

"देशभक्त !" क्या तुम उन लोगों में से एक हो जो आज़ादी की मशाल को जलाए रखने के लिए पीछे जंगलों में रह गए थे ? तुम कहां से आ रहे हो ?"

"मैं जंगल से आज ही सुबह वापिस आया हूं।"

"क्या ?"

"हां, मैं आज ही सुबह के धुंधलके में पहाड़ों से वापिस लौटा हूं।"

"और वो कौन है ?" गुथेरा ने मुरूउकी की ओर इशारा करते हुए पूछा।

"इससे कूड़ेखाने के पास मेरी मुलाकात हुई थी," मातीगारी ने कहा।

"सच में ?" मुरूउकी की ओर दुबारा घूमते हुए गुथेरा ने पूछा, "क्या तुम उन बच्चों में से हो जो गाड़ियों के कब्रिस्तान में रहते हैं ?"

"हां," उसने कहा।

उसने अब मातीगारी से पूछा, "तुम यहां बार में क्या कर रहे हो ? क्या तुम्हारा घर नहीं है ?"

"मैं अपने लोगों को तलाश कर रहा हूं···ताकि हम इकट्ठे घर जा सकें।"

"क्या उन देशभक्तों के परिवार जो लड़ाई में बच गए हैं ?"

"संभव है वे यह न जानते हों—कि वे वास्तव में कौन हैं; संभव है वे यह भूल गए हों··· वे कौन थे। इसलिए मैं सभी जगहों पर, बाज़ारों, सभी शापिंग सेंटरों और सभी सार्वजनिक जगहों पर जाकर विजय का बिगुल बजाकर सभी देशभक्तों के बचे हुए परिवारों को इकट्ठा करूंगा। मैं उन्हें बताऊंगा : सेटलर विलियम मर गया है; आओ अब घर चलें।"

"सेटलर विलियम ? वो कौन है ?"

अब मातीगारी की बारी थी कि वह गुथेरा को अपनी कहानी सुनाता : कैसे उसने झाड़-झंखाड़ साफ किए, कैसे उसने हल चलाया और बीज बोये; और बाद में कैसे उसने घर बनाया। और इस सारे समय में सेटलर विलियम अपनी पेंट की जेबों में हाथ डालकर, सीटी बजाता हुआ, यहां-वहां आर्डर देता हुआ घूमता रहा। उसने गुथेरा को बताया कि मकान बनने के बाद कैसे सेटलर विलियम ने उसे छीन लिया। यही उसने फैक्टरियों में किया। मातीगारी सब कुछ पैदा करता था और सारा मुनाफा सेटलर विलियम ले लेता था। ज़रा कल्पना करो : खेत जोतने वाला भूख से मर रहा है, इमारत बनाने वाला बरामदे में सो रहा है; दर्जी बिना कपड़ों के घूम रहा है और एक ड्राइवर बिना गाड़ी के मीलों पैदल चल रहा है। ऐसी दुनिया कैसी लगेगी ? मातीगारी ने गुथेरा को बताया कि कैसे वह सेटलर विलियम से लड़ा; और कैसे जॉन ब्याय ने अपने मालिक की जान बचाई। उसने विस्तार से बताया कि कैसे वह जंगलों और पहाड़ों में भागा, और सेटलर विलियम और जॉन ब्याय ने उसका पीछा किया; और तब के बाद कैसे वे पर्वतों और घाटियों में एक-दूसरे को ढूंढ़ते हुए भटकते रहे।

"यह केवल कल की बात है कि वह गिर पड़ा, और मैं उसकी छाती पर बायां पैर रखकर, विजय के हथियार थामे, अपने दिल में जीत की खुशी धारण किए हुए था : अब घर मेरा है, यह मेरे और मेरे परिवार का है···यही वजह है कि मैं अपने लोगों को ढूंढ़ रहा हूं, अपनी बेटियों को, पुत्रों को, पोते-पोतियों को, अपनी पत्नियों को···"

"तुम्हारी पत्नियां ? तुमने उन्हें कहां छोड़ दिया ?" गुथेरा ने उससे ऐसे लहजे में पूछा,

मानो उसे उसकी बात पर विश्वास न हुआ हो। "यह ऐसी फिजूल की बात क्यूं करता है !"

"मैंने उन्हें कहां छोड़ा, मेरे बच्चे ? इसीलिए तो मैं हथियार उठाकर जंगलों और पर्वतों में लड़ाई लड़ने चला गया, ताकि उन्हें घर मिल सके। किंतु मेरी एक समस्या है। अब मैं उन्हें कहां ढूंढू ? उन्हें कहां से ढूंढना शुरू करूं ?"

गुथेरा ने मातीगारी के बारे में यह याद करते हुए कि उसने कैसे उसे पुलिस के कुत्ते से बचाया था, झिझक महसूस करते हुए उससे पूछा, "क्या तुम बगीचे में गए हो ?" "अच्छा तो वे अभी भी बगीचों में गुलामी करते हैं ?" मातीगारी ने पूछा।

"तुम उनसे और क्या करने की अपेक्षा करते हो ? आज तुम्हें यहां ऐसी कोई जगह नहीं मिलेगी जहां औरतें अपने बच्चों और पतियों की भूख मिटाने के लिए कुछ-न-कुछ तलाश न कर रही हों।" उसने कहा, "अधिकांश औरतें चाय, कॉफी और रेशे के बगीचों में दिहाड़ी पर मजदूरी करती हैं। यदि तुम यह जानना चाहते हो कि अपनी तलाश कहां से शुरू करो तो बगीचों में जाओ। जाओ और उन्हें मुक्त करो; हमारी चिंता मत करो, हमने तो अपनी आत्मा बहुत पहले इन बारों में खो दी है।"

"किंतु यहां तो बहुत से बगीचे हैं। मैं किस बगीचे से शुरू करूं ?" मातागारी ने लगभग अपने आप से सवाल किया।

"गुथेरा ने पलभर के लिए उसके सवाल पर सोचा। सारी बातचीत के दौरान वह यही सोचती रही थी कि वह इस व्यक्ति के उपकार का बदला कैसे चुकाए। अब उसे मौका मिला था और वह इसे गंवाना नहीं चाहती थी। चाहे वह सनकी था या नहीं, यह बात अब महत्त्वपूर्ण नहीं थी। उसने सोचा : मैं इसके साथ जाऊंगी, इसकी सहायता करूंगी, जब तक कि यह अपने लोगों को ढूंढ़ नहीं निकालता।

"आओ, मैं तुम्हें सबसे नजदीक वाले बागीचे में ले चलती हूं," उसने मातीगारी से कहा, "मेरे लिए उन औरतों से बात करके सूचना इकट्ठी करना अधिक आसान होगा।"

"आओ, अभी चलें," उसने खड़े होते हुए कहा, "आओ अंधेरा होने से पहले निकल चलें।"

उसने अभी तक न कुछ खाया था और न ही पीया था। एक वेटरेस ने उसका खाना एक कागज़ में लपेट दिया। मातीगारी ने खाने का पैकेट और बंद बीयर की बोतल कोट की जेबों में रख लिये।

अनुवाद : श्रीवत्स, आशा कंवर

कहानी

इन्द्रधनुष स्याह

□ सुशीलकुमार फुल्ल

इन्द्रधनुष के रंग अचानक स्याह पड़ गए। अपने प्रयत्नों की नन्हीं-सी तूलिका से वह लगातार अपने जीवन में रंगों का संयोजन करता रहा है और उसे अपनी सफलता पर सन्तोष भी रहा है। अब भी वह बैंगलौर आया था, तो एक खास उद्देश्य की सिद्धि के लिए। पैसा उसके पास था···सो उसके बेटे को मेडिकल कालेज में प्रवेश मिल गया था। पति-पत्नी दोनों बेहद खुश थे। राहुल भी खुश था। बोला था, "डैड, मैं डॉक्टरी करके उस रेगिस्तान में ऐसी प्रेक्टिस जमाऊंगा कि आप दंग रह जाएंगे। आपने तो घिसट-पिसटकर कुछ किया है। कुछ बनना हो तो कुछ करना तो पड़ता ही है।"

हरिओम मुस्करा दिया था। उसे अपने बेटे की दृढ़ता अच्छी लगी। फुसफुसी सी योजनाओं से कुछ नहीं बनता। किसी कोने में एक अस्फुट स्वर उभरा, "मुझे कौन-सा सब कुछ धरा-धराया मिल गया। एक स्थान से उखड़कर दूसरी दुनिया में जाना पड़ा। मर-मराकर इंजीनियरिंग में डिग्री की। मां-बाप ने कर्ज लेकर उसे पढ़ाया···फिर नौकरी मिली थी—डेली वेजिज पर। अब भी नियमित नौकरी के लिए इन्टरव्यू होता तो किसी-न-किसी राजनेता का उम्मीदवार फंस जाता और वह लुढ़क जाता। उसके एक दोस्त ने तो आत्महत्या ही कर ली थी। वह कहा करता था—हरिओम! इस जिल्लत की जिन्दगी से तो मर जाना बेहतर है। अगले जन्म में मैं किसी दूसरे देश में जन्म लूंगा, जहां सब सुविधाएं हों···कम-से-कम काम का अधिकार तो सुरक्षित हो। यहां सड़कें नापते रहो···और फिर उसने सचमुच पंखे से लटककर परलोक का रास्ता पकड़ लिया था।···उस दिन किसी मंत्री ने नये ब्लाक का उद्घाटन करना था। प्रिंसिपल को आलोक की आत्महत्या का पता चल गया था परन्तु उसने यह बात मंत्री तक न पहुंचने दी। ऐसा करने से प्रिंसिपल का इमेज खराब होता तथा मंत्री का मूड बिगड़ जाता। मंत्री के स्वागत में अपने भाषण में प्रिंसिपल ने कहा था—हमारी संस्था के छात्र मेधावी हैं। कोई बेकार नहीं घूमता बल्कि देश-विदेश में भारत का नाम चमका रहे हैं।

मंत्री ने प्रिंसिपल की भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा अगले उद्घाटन के लिए चल दिए। उनके जाते ही प्रिंसिपल ने हॉस्टल के लड़कों को बुलाया तथा कहा—आलोक को हॉस्टल में आने किसने दिया। वह तो हमारा छात्र ही नहीं। जब था तो उन दिनों में भी इसने मेरे लिए समस्याएं खड़ी कीं। तुम्हें याद होगा उसने दीक्षांत-समारोह में ही अपनी डिग्री फाड़ दी थी। पढ़ने के लिए कोई तुम्हें बुलाने जाता है। शायद उसके दिमाग में ही फर्क था। कैसे-कैसे पागलों

से पाला पड़ता है? प्रवेश नहीं मिलता तो भी आप दनदनाने लगते हैं; प्रवेश मिल जाता है, तो फिर फुंफकारने लगते हैं। कैसी विचित्र स्थिति है। मैं किसी को छोड़ूंगा नहीं, समझे!

सरकार बदल गई थी।

वह आरक्षित पोस्ट पर डेली वेजिज़ पर लगा हुआ था। पहले ऐसा प्रावधान था कि यदि तीन बार विज्ञप्ति देने पर भी वर्ग-विशेष का उम्मीदवार नहीं आता था, तो पोस्ट ओपन कर दी जाती थी। यह संयोग ही था कि वह आरक्षित पोस्ट के न भरी जाने के कारण दैनिक वेतन पर रख लिया गया था।

सरकार क्या बदली, उसके लिए नई मुसीबत खड़ी हो गई। अब निर्णय यह हुआ कि भले ही कोई उम्मीदवार न मिले, भले ही पोस्ट बीस वर्ष तक खाली रहे लेकिन इसे ओपन नहीं माना जाएगा।

वह घर बैठ गया था। पढ़ा-लिखा बेकार। समाचार-पत्रों में सरकार की घोषणाएं पढ़ता—हम ब्रेन-ड्रेन नहीं होने देंगे। बल्कि विदेशों में कार्यरत डाक्टरों, इंजीनियरों को वापिस बुलाएंगे। यहां उन्हें उपयुक्त नौकरियां देंगे। उनकी पढ़ाई-लिखाई तथा प्रशिक्षण पर हमारा देश कितने पैसे खर्च करता है···और फिर वे डालरों की चकाचौंध में विदेश चले जाते हैं।

हरिओम् को गुस्सा आता। यहां जो बेकार हैं, उनके लिए नौकरियां नहीं लेकिन विदेश से वापिस बुलाएंगे···ताकि वे बेकार हो सकें। उसने जी-जान से कोशिश की थी···बहुत लिखा-पढ़ी की···डरता भी रहा कि किसी एजेंट के चक्कर में पड़कर लुट न जाए क्योंकि ऐसी कहानियां भी उसने सुन रखी थीं···लेकिन उसे सफलता मिली थी। सिविल इंजीनियर था···रेगिस्तान की एक कम्पनी ने उसे बुला लिया था···हवाई जहाज़ का टिकट उसके घर पहुंच गया था। मां-बाप ने थोड़ा प्रतिरोध किया था—यहीं कुछ कर-करवा लो। सुना है विदेशों में भारतीयों की स्थिति कोई बहुत अच्छी नहीं है···और फिर घर-परिवार एक बार छूट गया तो छूट गया।

लेकिन वह नहीं माना था। उसने कहा था—मां, मैं यहां बेकार हूं। आप लोगों पर बोझ। विदेश में दो-चार साल लगा आऊं, फिर देखो किस मजे से आपका जीवन कटेगा।

इन्द्रधनुषी रंग बनने लगे थे। और विदेश जाकर भी कभी कोई लौटता है—वहां से आते हैं तो पैसे···या फिर हर उत्सव के लिए छपे-छपाए कार्ड। लम्बी-लम्बी चिट्ठियां लिखने के लिए वहां वक्त ही कहां है···यहां तो कोई काम ही नहीं होता···कोई मनोरंजन नहीं···पैसा ही नहीं तो मनोरंजन कैसा···बस चिट्ठियां लिखकर तृप्त हो लेते हैं।

वह वहीं रच-बस गया था। अपने गांव लौटा था तो सिर्फ शादी के लिए। यह भी मजबूरी थी। उसके अपने मां-बाप नहीं माने थे···न ही लड़की के। नहीं, वह तो चाहता था कि लड़की ऐसे ही उसके पास पहुंच जाती और वह उसे पत्नी के रूप में हवाई-अड्डे पर रिसीव कर लेता। वह तीसरे ही दिन दुल्हन को लेकर वापिस चला गया था।

पच्चीस साल का अन्तराल। अब भी उसने कहां आना था। वह तो राहुल को मेडिकल कालेज में दाखिल करवाना था···दक्षिण भारत के एक कालेज प्रिंसिपल से उसने पत्राचार किया था। एक लाख रुपया देकर राहुल को दाखिला मिल गया था। क्षण-भर के लिए उसने सोचा था—मैं भारत में ही होता तो क्या यह कभी संभव हो सकता था?

उसकी पत्नी भामा ने कहा था—परमात्मा जो करता है, सही करता है, लेकिन मुझे तुम्हारी यह बात पसंद नहीं कि हमारी बेटी ऋता अमरीका में जाकर पढ़े। अमरीका की संस्कृति अलग है। नत्थन की बेटी वहां पढ़ने गई थी'''उसने चार साल में तीन बार विवाह कर लिया था और बाद में'''

'भामा, तुम अब भी सोलहवीं शताब्दी में घूम रही हो। और फिर हमारे बच्चे ऐसे नहीं हैं।' फिर हरिओम् ने कहा था—लगता है तुम कुछ ज्यादा ही डरने लगी हो। चलो पहले राहुल को भारत में दाखिला दिलवा देते हैं, फिर ऋता को अमरीका छोड़ आएंगे।

'न बाबा, न। मैं अपनी लड़कियों को अकेले छोड़कर नहीं जाऊंगी। तुम हो आओ।'

वह नहीं माना था। उसने सोचा था—अपने दोस्त भंडारी से बोल जाएगा कि ऋता और मीता का ध्यान रखे। बस एक हफ्ते की तो बात है। इस यात्रा में भामा का मन भी बहल जाएगा!

इन्द्रधनुष अचानक स्याह पड़ गया। रेगिस्तान में आंधियां चलने लगी थीं और उनका छोटा-सा घर रेत का टिब्बा बन गया था। ऋता और मीता'''उनका क्या होगा? क्या हुआ होगा? भंडारी का गुंडा बेटा ऋता को फुसलाकर ले गया होगा—लेकिन कहां'''

हरिओम् की रगों में खून जम गया। भामा बोली—"जो भी हो मुझे तो वापिस ले चलो। मेरी बेटियां क्या सोचती होंगी।"

"वापिस ले चलूं'''लेकिन कैसे? क्या रेगिस्तान के ऊंट पर'''कोई दो-चार कोस तो है नहीं'''और फिर हमारी फ्लाईट तो बुक है लेकिन भामा वहां तो सब उजड़ चुका है। देश ही मिट गया'''उसका नाम ही मिट गया'''लोग भाग रहे हैं'''"

"तुमने कभी रेगिस्तान में तूफान को देखा है? पृथ्वी के कण उड़ने लगते हैं'''लम्बे-लम्बे चलते हुए काफिले'''भामा'''ऋता और मीता'''उन काफिलों में खो गईं बच्चियां'''भंडारी'''और भंडारी का पुत्र'''मैंने कहा था न कि ऋता को अमरीका भेज देते'''"

"तुम कुछ करो भी न। ऐसे हार मानने से तो कुछ नहीं होगा।

"क्या करूं भामा? बीसवीं शताब्दी में भी एक देश दूसरे देश को हड़प सकता है'''मेरी सारी मेहनत बेकार हो गई। मैंने ऐसा कभी सोचा भी नहीं था।"

"कोई बात नहीं। फिर से घर बना लेंगे।"

हरिओम् झल्लाकर बोला, "एक जीवन में एक ही बार घर बनता-बसता है। ऋता और मीता'''रेगिस्तान में भटकती हुई'''"

"तुम्हीं मुझे जिद करके ले आए'''नहीं हममें से एक तो उनके साथ होता'''खैर'''"

"भामा'''तुमने जिन्न का रूप देखा है'''उसके मुंह में हजारों आदमी एक साथ ही समा जाते हैं'''मैं भी काल के जबड़ों में फंस गया हूं'''जहां का था'''वहीं लाकर पटक दिया गया हूं'''जिन्दगी के पच्चीस साल'''तपते हुए रेत-कणों में उस मुल्क के भवन बनवाता रहा'''अपने घर में इन्द्रधनुष सजाता रहा'''और एक रात में ही सब बदल गया'''देश का नाम और पहचान'''"

"तुम सब्र से काम लो जी। मैं फोन मिलाऊंगी'''भंडारी से बात करूंगी'''शायद ऋता-मीता से बात हो जाए।"

"हां···हो जाएगी···लोग कीड़े-मकौड़ों की तरह दौड़ रहे हैं···सीमा पार करने को···भारत लौट आने को और तुम फोन मिलाओगी।" फिर पूछा, "भामा, तुम्हारे पास स्वर्ग का फोन नम्बर भी है?"

भामा ने हकबकाकर अपने पति की ओर देखा और कहा, "तुम घबरा गए लगते हो।"

"नहीं भामा, जिस सड़क से उठकर मैं गया था···उसी पर पटक दिया गया हूं···हा···हा···तुमने कभी जिन्न नहीं देखा···अरब···ईरान की कहानियों में तो जिन्न अक्सर होते हैं···मुझे तो यहां भी चारों ओर जिन्न-ही-जिन्न दिखाई देते हैं···तुम यहीं ठहरो···मैं जिन्न के मुंह में जाकर देखता हूं···कि ऋता और मीता वहां हैं या नहीं···लेकिन भंडारी का गुंडा बेटा···" कहकर हरिओम् बैंगलोर की साफ-सुथरी सड़कों पर बेतहाशा दौड़ने लगा···दौड़ता ही चला गया।

इन्द्रधनुष स्याह पड़ गया था!

(हिंदी विभाग, कृषि विश्वविद्यालय, पालमपुर-176062)

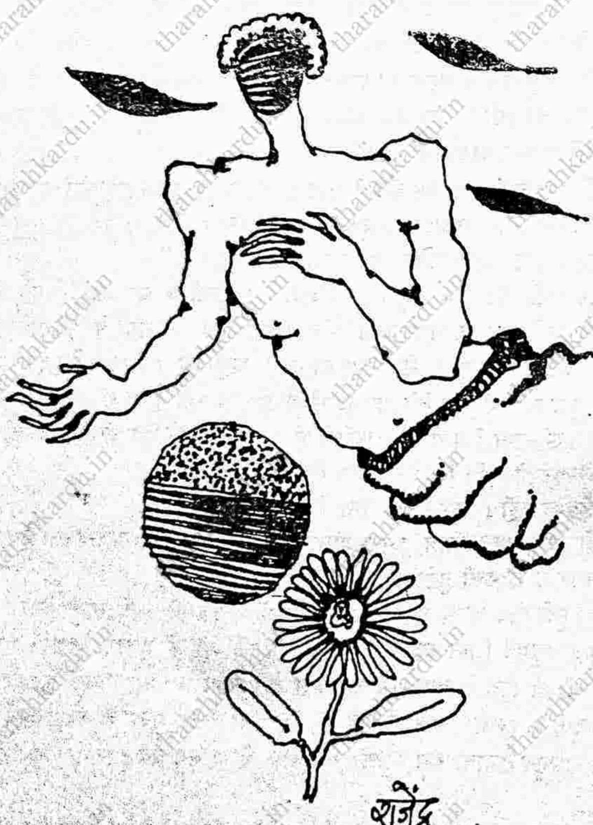

मेहमान

□ तारा नेगी

रचना घर पर अकेली है। वह सुबह की चाय पी रही है। पति टूअर पर बाहर गए हुए हैं और बेटा बंटी स्कूल जा चुका है। सुबह की जल्दी से निपटकर वह आराम से चाय पी रही है और साथ ही ताजा अखबार देख रही है। इस बीच दरवाजे की घंटी बजती है। इतनी सुबह कौन हो सकता है? रचना ने मन ही मन सोचा। वह नाइटी में ही दरवाजे तक चली आती है। दरवाजा खोलते ही वह एकदम चौंकी। उसे अपनी आंखों पर जैसे विश्वास नहीं हो पाया, "तु-तुम।" थोड़ी देर वह सकपका-सी गई। सहज भाव से आगन्तुक को अन्दर आने को भी न कह पाई। कुछ संयत हो कर कहती है, आओ, आओ, अन्दर आओ न।" नवीन को बैठा कर रचना उल्टे पांव भागती है और कपड़े बदल कर ही सामने आती है। नाइटी में नवीन के सामने आने में उसे झिझक-सी महसूस हुई। यूं बाहरी तौर पर तो वह सलीके से उसके सामने पेश आती है परन्तु अन्दर से एकदम नर्वस हो रही है। नवीन ने उसके दरवाजा खोलते ही 'हैलो रचना' कहा परन्तु वह उसका उत्तर भी न दे पाई। वह तो उसे देखती ही रह गई। उसे विश्वास ही नहीं हो पाया कि यह नवीन ही है जो दस सालों बाद उसे यूं अचानक मिल रहा है। रचना स्वयं चाय पी ही रही थी इसलिए वह झटपट पहले नवीन के लिए भी चाय बना लाई और अपने आधे कप को दुबारा भर कर नवीन के साथ चाय पीने बैठी है।

"इतने सालों बाद यूं अचानक मिलोगे मुझे उम्मीद नहीं थी।" यह कहकर रचना ने खामोशी को तोड़ा।

"आफिस के काम से इस शहर आया हूं, सोचा मिल लिया जाए।"

"और मेरा पता कैसे जान लिया?"

"मुझे हमेशा मालूम रहता है। कितनी बदल गई हो तुम, मैं तो पहली नजर तुम्हें पहचान भी न पाया।"

"मालूम है मेरा वजन पैंतालीस किलो से पचपन किलो हो गया है, शायद इसलिए पहचानने में भूल रही हो।"

"शायद यह कारण नहीं रहा असल में मेरे मन में तुम्हारी वही तस्वीर रही जो दस साल पहले देखी थी।"

नवीन और भी कहना चाह रहा है जैसे तुम एक भरी-पूरी औरत में कैसी दिखती होगी यही सोचता रहता था। आज तुम्हें देखकर मैं अचम्भित रहा। इसलिए थोड़ी देर उस दस साल पहले वाली रचना और इस बदली हुई रचना की तुलना करता रहा। आदि-आदि,

परन्तु वह यह सब कह नहीं पाया।

रचना का भी यही हाल है "बदले तो तुम भी बहुत हो नवीन" यह वाक्य उसके मुंह तक आते-आते रुक गया है।

"तुम्हारे बारे सुनती तो सब कुछ रही हूं परन्तु मिलना अब हुआ है?"

"अच्छा! क्या-क्या सुना तुमने मेरे बारे में?" नवीन ने उसके चेहरे पर नज़रें गड़ाते हुए पूछा जैसे उसे उत्तर की बहुत उत्सुकता हो।

"यही कि पढ़ाई पूरी करने के बाद तुम बड़े आफिसर बन गए हो, कस्बे से दूर बम्बई जैसे महानगर में नौकरी कर रहे हो और···"

"और क्या?" नवीन ने फिर उत्सुकता दिखाई।

"और तुमने किसी बंगाली लड़की से शादी की है।"

नवीन गुमसुम-सा रह गया है परन्तु रचना भी इससे आगे उसे नहीं कुरेदना चाहती कि तुमने अपने यहां की लड़की को छोड़कर बंगाली लड़की से क्यों शादी की? क्या अब दोनों खुश हैं या नहीं? आदि नितांत निजी सवालों को वह उन दोनों के बीच नहीं आने देना चाहती।

नवीन को भी शायद लगा कि बातचीत कुछ अलग मोड़ ले रही है और अगर घर में कोई दूसरा होगा तो इस तरह की बातें सुनकर क्या सोचेगा इसलिए उसने घर में इधर-उधर खोजती नज़रों से कहा, "भाई साहब कहां हैं? दिखाई नहीं दे रहे।"

"वे टूअर पर गए हुए हैं। उनका कोई न कोई काम बाहर लगा रहता है और हमारा एक बेटा है पांच साल का वह स्कूल चला गया है।"

नवीन ने जैसे राहत की सांस ली और रचना को पहले की ही तरह निहारता रहा। रचना सिर झुकाए सिकुड़ी-सिमटी-सी पांव से ज़मीन खुरचती रही। नवीन की आंखें आज भी उसे वैसी ही नशीली लग रही हैं जैसी उन दिनों हुआ करती थी जब उन दोनों का प्रेम परवान चढ़ा था। उसके मन में पुराने दिनों को याद कर हलचल मची हुई है। उसे ग्लानि भी हो रही है कि न जाने नवीन उसके इस व्यवहार पर क्या सोच रहा होगा। सोच रहा होगा कि रचना शायद उसके आने से खुश नहीं है। क्या वह इस हड़बड़ाहट और खामोशी का मतलब नहीं जानता होगा? रचना उसकी तरफ सीधे मुंह देख भी नहीं पा रही।

नवीन के 'अच्छा अब मैं चलता हूं' कहने से रचना बुरी तरह चौंकी। वह तो मन ही मन यही चाह रही थी कि नवीन इसी तरह उसे देखता बैठा रहे और वह स्वयं सिर झुकाए ज़मीन खुरचती रहे। वह कुछ भी तो पूछ नहीं पाई है अभी। अपने मन की कुछ भी बात नहीं कर पाई है। वह अपने मुंह से कैसे कहती कि नवीन, दस सालों के विवाहित जीवन के बावजूद मैं तुम्हें नहीं भूली हूं। वक्त-बेवक्त तो बहुत याद आते रहे हो। तुम्हारी पसन्द अब मेरी पसन्द हो गई है इसीलिए घर भर में तुम्हारी पसन्द के रंग के पर्दे, तुम्हारी ही पसन्द का केन का फर्नीचर और तो और तुम्हारी ही तरह अब मैं भी कविता करने लगी हूं। कहीं भी तुम्हारा नाम आते, पढ़ते या सुनते वही पहली मुलाकात-सी झुरझुरी शरीर में दौड़ती रही है। स्कूल कालेज के उस लम्बे साथ को समय का अंतराल ज़रा भी नहीं मिटा पाया है।

नवीन को छोड़ने जब रचना दरवाजे तक आई तो न जाने किस हौसले और अधिकार से उसने कहा, "आजकल मैं और मेरा बेटा अकेले हैं, वैसे भी मन नहीं लगता, हो सके तो आज डिनर पर आ जाओ।"

अब चौंकने की बारी नवीन की है। शायद अब उसे भी विश्वास नहीं हो रहा कि यह शब्द थोड़ी देर पहले सिकुड़ी-सिमटी बैठी रचना ने ही कहे हैं। उसकी आंखों में खुशी की जो चमक उभरी वह रचना से नहीं छुपी। अंततः नवीन ने कहा, "काम बहुत हैं इसलिए वादा तो नहीं करता परन्तु आने की कोशिश जरूर करूंगा।" नवीन चला गया। रचना सोफे पर पसर कर नवीन से हुई उस छोटी मुलाकात का विश्लेषण करने लगी है। उसकी एक-एक बात फिर से याद कर रही है।

नवीन को लगभग दस साल बाद मिलना उसे इतना अच्छा लगा कि वह इस खुशी में अपने को गदगद महसूस कर रही है। उसे क्या मालूम था कि आज की यह सुबह इतनी खुश-नुमा और रोमांचक हो जाएगी।

दिन-भर रचना उत्साहित रही। उसे पूरा विश्वास है कि नवीन व्यस्तताओं के बावजूद जरूर आएगा। परन्तु फिर भी कभी-कभी आशंका के बादल घिरने लगते—अगर वह नहीं आया तो? हो सकता है उसने मन रखने के लिए ही आने को कहा हो? मुझे अकेली जानकर न आने का बहाना करे तो? और अगर वह रात को यहीं रुका तो? आस-पड़ोस वाले क्या कहेंगे? क्या कहेगी वह कि कौन था वह, क्या लगता है उसका? पति को क्या जबाव देगी कि तुम्हारे पीछे कौन रुका था यहां? या रंजीत टूअर से जल्दी ही आ जाए तो इन सब सवालों के रहते भी न जाने अन्दर के किस कोने से बार-बार आवाज आती, "मेरे मन में कोई चोर तो है नहीं तो फिर क्यों किसी से डरूं।" दरअसल रचना नवीन को डिनर पर बुलाकर कुछ नया नहीं जोड़ना चाहती बल्कि दस साल पहले जिए हुए की जुगाली-सी करने का इसका मन हो आया है। अपने अतीत के कुछ जीवंत क्षणों को इस मुलाकात के माध्यम से थोड़ी-सी रोशनी, जरा-सा स्पंदन देने की चाह है।

नवीन के आने या न आने की दुविधा तो उसके मन में बराबर रही परन्तु फिर भी उसने उसकी पसन्द के दो-चार पकवान और गाजर का हलवा भी बना कर रख लिया। जिसके लिए नवीन बराबर टूट कर पड़ता था।

नवीन शाम को जल्दी ही आ गया। उसे देखकर रचना का मन उछलने लगा है। उसने रचना को मिठाई का डिब्बा और चॉकलेट पकड़ाते हुए बंटी को गोद में उठाकर चूम लिया और रचना से कहा, "चॉकलेट तो हम अपने राजा बेटे के लिए लाए हैं यह इसे दे दो और मिठाई खास तुम्हारे लिए।"

रचना ने जब डिब्बा खोला तो उसके मुंह से चीख निकली है, "रसगुल्ले! वाह, मजा आ गया।"

इस बीच रचना को जैसे कुछ याद आया है और उसका मुंह लाल हो गया है। वह डिब्बा लेकर रसोई में भाग गई है।

एक बार फिर रचना को अपने कालेज के दिन याद दिला गया है नवीन। रचना और नवीन जब भी कहीं कैंटीन आदि में बैठते तो रचना रसगुल्ले की ही फरमाईश करती थी।

रसोई से बाहर आने से पहले वह खुद को संयत करने की गरज से चाय तैयार करने लगी है। एक झिझक-सी फिर पसर गई जो नवीन का खुल कर स्वागत भी नहीं करने दे रही। परन्तु वह मन-ही-मन इतनी खुश है कि अगर संभव होता तो वह नवीन के सामने अपना दिल खोलकर रख देती कि देखो मैं तुम्हारे आने से कितनी खुश हूं। परन्तु वह शर्म और हड़बड़ाहट

में दिन-भर सोची हुई बातें भी भूल गई है जो कुछ वह विशेष रूप से पूछना चाहती थी। गनीमत है कि रचना ने नवीन की पसन्द के संतरी रंग का सूट पहले ही डाल लिया वर्ना अब तो वह ऐसी नर्वस हो रही है मानो सोच रही हो कि इस अचानक आए मेहमान के लिए क्या करे, इसे कैसे अटैंड करे।

नवीन अब तक काफी खुल चुका है। जैसे दस साल से बन्द पड़े किवाड़ एकाएक खुलते जा रहे हों। पहले वह इधर-उधर की बातें करता रहा कि अपने सहपाठियों में से वह किस-किस से मिला, कौन कहां और क्या काम कर रहा है आदि। कभी-कभी बीच में स्कूल कालेज का कोई हसने-हंसाने वाला प्रसंग छिड़ जाता।. उसके इस व्यवहार से रचना को समझने में देर नहीं लगी कि वह जतलाना चाहता है कि वह स्वयं भी स्कूल-कालेज की बातें भूला नहीं है। लेकिन रचना के साथ का वह प्यार'''इस समय कहीं से भी ऐसा नहीं लग रहा कि एक दूसरे पर जान न्योछावर करने वाले दो प्रेमी बैठे हैं। उन दोनों के सपने तभी टूटने लगे थे जब नवीन के डेडी का तबादला दूसरी जगह हो गया था। उसके बाद नवीन के खत आते रहे। उसमें उसकी नौकरी लगने तक इंतजार करने का अनुरोध रहता परन्तु रचना घरवालों की मर्जी के खिलाफ इतना लम्बा इंतजार नहीं कर पाई। तभी से दोनों की जिन्दगी अलग-अलग हो गई।

नवीन बंटी के साथ बहुत हिल-मिल गया है। बंटी भी उसकी गोद में अपना आसन जमाए है। खाना भी नवीन के साथ ही खाया। अपनी पसन्द का खाना देखकर एक बार फिर रचना को नवीन की उन्हीं निगाहों का सामना करना पड़ा। वह मन ही मन खुश भी हुई कि नवीन को अहसास तो हुआ कि उसकी पसन्द नापसन्द का खास ख्याल रखा गया है।

बंटी सोने से पहले नवीन से परी की कहानी सुनाने की जिद करने लगा। नवीन ने कहानी शुरू की, "बेटे एक थी परी, वह बहुत ही सुन्दर थी। उसका एक दोस्त था। वे एक दूसरे को बहुत चाहते थे।"

नवीन ख्यालों में खो गया तो बंटी ने टोका, "आगे क्या हुआ अंकल ?"

"आगे ! आगे हुआ यह कि लोग उन दोनों से बहुत जलते थे और उन्हें एक-दूसरे से अलग करने की सोचते थे।"

"फिर क्या अंकल ?"

"फिर लोगों ने उन्हें अलग करके ही दम लिया उनमें लोगों का मुकाबला करने का साहस नहीं था। मगर वे अलग होकर भी एक दूसरे को बहुत याद करते रहे।"

बंटी सो चुका है और नवीन रचना की तरफ यूं देखने लगा मानो पूछना चाहता हो, "क्या मैंने कहानी में कुछ गलत कहा रचना ?"

रात गहराती जा रही है किसी अंजान आशंका से रचना घबराने-सी लगी है। उसने बंटी को नवीन की गोद से उठाने का बहाना किया और वहां से उठ गई। फिर भी इस प्रक्रिया में दोनों के हाथ एक-दूसरे से टकरा गए। दोनों को बिजली का सा झटका लगता है।

रचना ने दूसरे कमरे में नवीन का विस्तर लगा दिया है। उसने नवीन से कुछ गंभीर होते हुए कहा; "आप थक गए होंगे अब आराम कर लीजिए।"

रचना के तुम से आप पर उतरने के अहसास ने नवीन को भी सचेत किया कि वह कहां और किस के घर में बैठा है। वह वहां से उठकर अपने विस्तर पर बिना कुछ कहे लेट गया है। रचना भी अपने कमरे में लेट गई है।

रचना और नवीन, नवीन और रचना, उस रात पूरे पांच कमरों के कोठीनुमा मकान में बस यही दो नाम थे। तीसरा कोई था तो छोटा-सा नासमझ बच्चा। वे दोनों अगर चाहते तो इस एक रात में ही अतीत के अधूरे को खींच सकते। जिन्दगी में बिछुड़ने के गम को भुला सकते कौन था उस रात जो उन्हें मनमानी करने से रोकता-टोकता। दोनों ने कभी सोचा भी नहीं था कि जिन्दगी में एक रात ऐसी भी होगी।

नवीन की तरह ही रचना भी उस रात करवटें बदलती रही। रचना को अहसास था कि अगर वह ज़रा-सा खुले, तनिक छूट दे तो कोई वजह नहीं कि नवीन पीछे हटेगा। वह उसके ज़रा से संकेत पर समय के अंतराल को पाट देता।

सुबह के समय रचना की आंख लगी। वह जागी तो काफी देर हो चुकी है। हड़बड़ाकर देखती है कि दूसरे कमरे में नवीन भी गहरी नींद सो रहा है। चाय बनाकर वह दोनों कप लिए नवीन के कमरे में गई। दोनों में 'गुडमार्निंग' भी नहीं हो पाई। अब दोनों चुपचाप चाय पी रहे हैं। शायद दोनों को रात के बीत जाने पर खुशी और गम दोनों एक साथ हो रहे हैं। खुशी इस बात की कि कुछ अप्रिय नहीं घटा और गम इस बात का कि ऐसी सुहानी रात को उन्होंने यूं ही बीत जाने दिया। जब कि मार्च का महीना है। ठंड हट रही है और गर्मी भी अभी दूर है। आसमान में घने तारों के बीच पूर्णिमा के करीब का चांद रात भर रोशन होता रहा।

चाय पीने के बाद दोनों कुछ सामान्य होने लगे हैं। रचना बच्चे को स्कूल भेजने और नाश्ते की तैयारी में लग गई और इस बीच नवीन नहा-धोकर तैयार हो गया। रचना ने नहीं सोचा था कि वह इतनी जल्दी जाने की तैयारी कर लेगा। वह तो यही चाहती रही कि नवीन रुके और वे दोनों कुछ घड़ी और साथ-साथ रह सकें। एक दूसरे में बहते हुए और अपनी-अपनी परिधि में सुरक्षित।

लेकिन रचना नवीन को रुकने को नहीं कह पाई। इतना भी नहीं कह पाई, बहुत जरूरी है क्या जाना? एक दिन और नहीं रुक सकते? अगर वह इतना कह पाती तो नवीन जरूर रुकता। वह जानती है कि नवीन को कोई खास काम नहीं है। यह बात वह रात को बातों-बातों में बता ही चुका है। शायद नवीन को भी रचना से दूर रहने में ही दोनों की भलाई मालूम पड़ रही है।

इसीलिए उसने एकाएक विदा ली और चलता बना। आज की सुबह रचना घर पर फिर अकेली है। वह सूने घर के दरवाजे पर खड़ी अपने मेहमान को दूर तक जाते एकटक देख रही है।

[1318 पूर्वांचल, जे० एन० यू० नई दिल्ली-67]

कविता

तीन कविताएँ

☐ गंगाप्रसाद विमल

पोशाक हैं शब्द

पहनते हैं शब्दों की पोशाक
दृश्य और घटनाएँ
हमारे ही हाथों।

हम न हों
तो अदेखी ही रह जाएँ
घटनाएँ
शब्दों की उलटबांसियों में
झिलमिलाता है
सब कुछ
गोपनीय।

कभी कभी ज़्यादा पिटे हुए
सपाट शब्दों से
अनावृत हो जाते हैं अर्थ
और झलक पड़ता है भौंथरापन।

कभी-कभी नि:शब्द
लम्बी चुप्पी के लिहाज से
ज़िराफ की तरह

अपनी गर्दन निकाल लेते हैं अर्थ
बच्चों की तुतलाहट में
कितने साफ और टटके
दीखते हैं अर्थ
वहाँ नितान्त अबोध-सा
चमत्कार

आर पार…
भीड़ की भाषा में
झलकती है प्रतिहिंसा
बस एक नशा
जिसमें ठहर नहीं सकता
विवेक
इसलिए परखो
कहीं तुम भीड़ की भाषा तो
नहीं लिख रहे ।

भीड़ की भाषा के
मस्तूल टाँग रहे हैं महत्त्वाकांक्षी कवि
ठहरो और सोचो
जब छितरा जायेगी भीड़
क्या तुम लिख पाओगे
गहराते सन्नाटे का मर्म
तब समझ पाओगे
क्या था व्यर्थ
शेष करवट बदलता है अनर्थ
ज़रूरी नहीं
कीमती पोशाकों में
सज सके वीभत्स
गढ़ाईगीर नहीं समो सकते
आखरों में
सुरक्षा जो बहुत अरक्षित है ।

निहत्थे हाथों में
जब आ जाता है दायित्व

तब
नाखून
संकल्प पूरा करते हैं ।

वर्ण की जगह नहीं रंग सकता
शब्द
केवल शब्दकोश उढ़ेल देगा
विकल्प
लेकिन शब्द का एक ही अर्थ
करा देगा अर्थान्तर प्रतीति

पोशाक के भीतर
और उसके भी भीतर
जिसे अनावत करना है अर्थ में
आने दो उसी वाष्पवाची दृश्य को
आने दो
पोशाकों के रहते
सत्य को ।

अगला पल

हवा में
उछलकर एक पत्ता
गिरता है चुपचाप

गिरता है पत्ता
फिर कभी न लौटने के लिए
अपनी आखिरी उछाल में
वह बनाता है स्मृति के लिए
एक यादगार

स्मृति में भी वह वहीं तक
रहता है बिंबित
एक अवधि तक

अवधि के इस अनन्त सागर में
स्मृति का एक बिन्दु
नगण्य है
नगण्य है क्षणांश का यह

सक्रिय उछाह
नगण्य है यह अस्तित्व
सदा के लिए।

भविष्य

स्मृति और कल्पना से भी परे
वह एक सोचा हुआ भविष्य
अब तक आया ही नहीं

प्रतीक्षा में था मैं
जंगलों से नगरों की यात्रा में
भटकाव और दुराव के बीच
छिपाता रहा वह छोटा-सा अकल्पित-सा स्वप्न
छिपाता रहा उसे भाषा से
चिह्न से
संकेतों से

टोहता रहा हर पड़ाव पर
शायद कोई इंगित
उसे मेरे पास ले आए

इतने वर्तमानों के बीच
युद्ध आए। विपदाएँ। हताशाएँ।
प्रतीक्षारत रहा
रहूँगा जब तक देख पाऊँगा
अपनी आत्मा के दर्पण में
वह सुरक्षित-सा भविष्य···

[3 ए/11 डब्ल्यू, ई० ए०, नई दिल्ली-110005]

सूरदास : तीन कविताएँ

□ आनन्द

एक

सूरदास
इकतारे पर
तान उठाता है
भप्पी लहरी की धुनों पर
भजन सुनाता है
हर शहर में होता है
एक अदद सूरदास
एक इकतारा
और एक वर्षा में भीगी
डरी हुई गौरैया-सी
कातर आवाज़

यह आवाज़
शहर की
भव्य इमारतों को छूती है
फरशी सलाम की तरह
कारों से निकलते
धुएं की लकीरों का
दूर तक पीछा करती है
बेबस फरियाद की तरह
हर गीत के साथ
आवाज़ का दर्द
सुरीलेपन में ढल जाता है
सूरदास के फटे कंबल पर
खोटा सिक्का भी चल जाता है।

सूरदास घंटों सोचता है
विधाता की कारगुज़ारी पर
वह भीतर तक
कृतज्ञता से भीग जाता है

कितना अच्छा है
आंखों की उजियारी
गले की मिठास में ढल जाती है
भूख आवाज़ को
सुरीला बनाती है
कंबल पर फेंका गया हर सिक्का
उसके लिए रोटी का संदेश है।
सुसंस्कृत और सुरुचि सम्पन्न
संगीत प्रेमी हैं देश के लोग
शायद इसीलिए
अब भी शेष है
सूरदास का दर्द

दो

सड़क की
आंख खुलते ही
दर्द के सैलाब में
डूब जाता है
शहर का एक हिस्सा
दर्द का नाम है सूरदास

सूरदास
किसी का नाम नहीं
एक पेशा है
जिसमें आदमी जिन्स भी होता है
और बाट भी
जब आंखों का उजाला सूख जाए
कायनात सारी सिमट कर
अंधेरे की चादर में दुबक जाए
और जब

अपनी हथेलियों में दबा चेहरा
निरन्तर सुबकी में बदल जाए
सूरदास हो जाता है आदमी
सूरदास किसी का नाम नहीं
खाली पेट में चिपके
कनखजूरे को
बहलाने का साधन है

रोज सुबह
जब शहर जवान होता है
फटे कंबल पर रिरियाता है
सूरदास का बुढ़ापा
चन्द सिक्कों की आशा में
अपनी आवाज़ को वेश्या बनाकर
राह चलते जूतों में धकियाता
किसी का नाम नहीं सूरदास
वह अंधकार का पर्याय है

तीन

जब से आंख का उजाला
अंधकार के महासागर में
खो गया है
उस शहर का एक आदमी
सूरदास हो गया है

आंखों के दीये नहीं जले
तो बुझ गए
संसार के सारे चिराग
बेमानी हो गए तमाम रंग
अर्थहीन हो गई
तितलियां, फूल
साड़ियों के नीले भंवर

वह केवल
पहचानता है भूख का दंश
भूख महज़

शरीर की ज़रूरत का ऐलान नहीं
टूटते रिश्तों का
कातर बयान है
ज़रूरी है भूख
ज़िन्दा रहने के लिए
ज़िन्दा है सूरदास
अपनी भूख के साथ

ज़िदगी की संकरी पगडण्डी पर
रोक लिया था उसका रास्ता
एक और भूख ने
उसकी शिराओं में
उमड़ उठा था
गुलाबी ज्वार
एक मुकाम पर
सीने के तपते बालू पर
सुलग उठे थे
पलास के फूल

कब बुझ गया वह अलाव
क्यों कर ठिठक गया
वह सनसनाता तनाव
कब उतर गया
हरहराता रक्त ज्वार
वह जीता है
पीता हुआ
ज़िदगी की हलाहल
अपने गीतों में ढाल कर दर्द
जगह-जगह से दरक गई
धरती की कथरी को
सीता है मुसलसल

[राजकीय महाविद्यालय, रामपुर, जिला शिमला, हि० प्र०]

चार कविताएँ

□ चंपा वैद

रात

रात रेत की तरह उड़ती रही
रात भर
काले समुद्र पर
मीऽलों तलाश में उस जहाज की
जो उसे ले जा रहा था दूऽर
बहुत दूर

वह केबिन केबिन ढूंढ़ती पहुंचती है
जहां केप्टन विंग
किसी औरत की बांहों में
भुजंग बना खुर्राटे भर रहा है
मेंढक के गले-सी उसकी सांसें
दूर से ही
अंदर-बाहर होती दिख रही हैं

रात सैर करती है बाग की
जहां फूलों की कतारें
खड़ी होती हैं
मिलटरी के जवानों-सी

सलामी की मुद्रा में
रात अपने वायुयान में बैठ
सूर्य के पिछवाड़े
आराम करने को बढ़ती है

धीरे धीरे डर कर
उभरने लगता है उजाला
छोटे बच्चे हवा में सिसकियां छोड़ते
चिड़ियों को जगाते हैं

चुनती रहती हूं

मैं चुनती रहती हूं
बिखरा चूना

मृत्यु के डर से
संभालती रहती हूं
चीज़ों को

बांझ

उसकी वह चीनी घुली आवाज़
गोल मुस्कराहट
अपने मुंह से
पैदा करना चाहती थी वह

जो अपनी कोख से न कर पायी

दिनचर्या

मस्तिष्क में तीनों काल
रुक गये हैं एक एक कर
फिर से वही खेल शुरू करती हूं
स्मृतियों से

शब्दों की फौज तैयार कर
धावा बोल देती हूं
सफ़ेद कागज़ के देश पर

tharahkardu.in

पन्नों पर ही पैदा करती हूं
अपना संसार

दूध के उबाले-सी
अपना घेरा बनाती
आ गिरी हूं बाहर
अपनी रेखाएं
बदल रही हूं अकेली

(1652, सैक्टर-बी, पाकेट I, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110030)

हिमाचल का हिन्दी उपन्यास

□ डॉ० हेमराज कौशिक

वस्तुतः उपन्यास आधुनिक साहित्यिक विधाओं में शीर्षस्थ स्थान पर प्रतिष्ठित है तथा साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में सर्वाधिक सशक्त एवं प्रौढ़ विधा के रूप में अपना स्थान बना चुका है। इस विधा का 'कैनवास' साहित्य सर्जक को यह अवसर प्रदान करता है कि वह जीवन का बहुआयामी चित्रण कर सके। मार्क्सवादी आलोचक रैल्फ फॉक्स उपन्यास के व्यापक फलक को देखते हुए इसे आधुनिक युग के महाकाव्य की संज्ञा से अभिहित करते हैं। उनकी मान्यता है, "उपन्यास केवलमात्र कथात्मक गद्य नहीं है, वह मानव जीवन का गद्य है—ऐसी पहली कला है, जो सम्पूर्ण मानव को लेकर उसे अभिव्यक्ति प्रदान करने की चेष्टा करती है। श्री ई० एम० फार्स्टर ने बताया है कि उपन्यास को अन्य कलाओं से अलग करने वाली महान विशेषता यह है कि इसमें गुप्त जीवन को प्रत्यक्ष करने की शक्ति है। इस प्रकार यह कला कविता, नाटक, सिनेमा, चित्रकला या संगीत से यथार्थ का एक भिन्न दृश्य प्रस्तुत करती है।" डी० एच० लारेंस उपन्यास की शक्ति और व्यापकता के सम्बन्ध में कहते हैं, "उपन्यास जीवन की एक उज्ज्वल पुस्तक है। पुस्तकें जीवन नहीं हैं वे सिर्फ हवा में थरथराहट पैदा करती हैं लेकिन उपन्यास एक ऐसी थरथराहट है जो समूचे जीवित मनुष्य को कंपा सकती है। कविता, दर्शन विज्ञान या किसी भी पुस्तक की थरथराहट से कहीं ज्यादा ज़बरदस्त उपन्यास की थरथराहट है।" साहित्य की अन्य विधाओं की भांति उपन्यास का केन्द्रीय विषय मनुष्य ही होता है केवल उसकी भूमिकाओं के परिप्रेक्ष्य पृथक्-पृथक् होते हैं। उपन्यास में जीवनगत भूमिकायें बुनी नहीं जातीं अपितु वे स्वतः इसकी विधागत अन्विति बनकर समाविष्ट होती हैं। मानव जीवन के समस्त कार्यकलाप पूर्णता के साथ उपन्यास में ही विवृत होते हैं। रैल्फ फॉक्स उपन्यास की विषयवस्तु के सम्बन्ध में कहते हैं, "उपन्यास का विषय है व्यक्ति। यह समाज के विरुद्ध, प्रकृति के विरुद्ध व्यक्ति के संघर्ष का महाकाव्य है।" हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचन्द उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मानते हैं। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।

उपन्यास सम्बन्धी विभिन्न परिभाषाओं के आलोक में कहा जा सकता है कि उपन्यास कल्पनात्मक गद्य साहित्य है जिसके अन्तर्गत वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों और कार्यों को कथानक में चित्रित किया जाता है। सभी परिभाषाएं इस बात पर बल देती हैं कि उपन्यास मानव जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाली विधा है। आज की जटिल गुम्फित एवं उलझन युक्त स्थितियों की सक्षम अभिव्यक्ति उपन्यास में ही सम्भव है। इस प्रकार उपन्यास

ज़िन्दगी के सबसे नज़दीक है और इसका 'केनवास' उपन्यासकार को जीवन के बहुरंगी और बहुआयामी चित्रण का अवसर देता है।

कोई भी साहित्य विधा वस्तुतः किसी प्रदेश अथवा क्षेत्र विशेष की संकीर्ण परिधि में बन्द नहीं रहती, न ही किसी प्रदेश विशेष की निधि ही होती है। वह वास्तव में सम्पूर्ण मानव समाज अथवा समूचे राष्ट्र की संवेदना की अभिव्यक्ति का माध्यम होती है और उसमें व्यक्त मूल्य सार्वभौमिक होते हैं। फिर भी एक प्रदेश अथवा भू-भाग में लिखा गया साहित्य किसी न किसी रूप में 'ज़मीन की गंध' लिए होता है। वह अपनी मिट्टी से जुड़कर वहां की सच्चाइयों को सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में किसी न किसी रूप में अवश्य उद्घाटित करता है। भले ही उनका सम्बन्ध उस सीमित परिवेश से ही न होकर व्यापक परिवेश से भी हो। इस दृष्टि से हिमाचल के हिन्दी उपन्यास का विवेचन करना समीचीन है। यह इसलिए भी ज़रूरी है कि एक प्रदेश के रचनाकारों के साहित्यिक योगदान का सर्वेक्षण एक साथ हो सके।

प्रस्थान बिन्दु

हिमाचल के हिन्दी उपन्यास का इतिहास बहुत पुराना नहीं। हिमाचल के सन्दर्भ में हिन्दी उपन्यास की शुरुआत यशपाल के सन् 1941 ई० में प्रकाशित उपन्यास 'दादा कामरेड' से होती है। यशपाल यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध प्रतिष्ठित कथा-शिल्पी हुए हैं तथापि उन्हें हिमाचल के हिन्दी उपन्यास की यात्रा से जोड़ना उचित होगा। हिमाचल के उपन्यास साहित्य के इतिहास में यशपाल वह प्रस्थान बिन्दु है जहां से यहां के उपन्यास की समृद्ध शुरुआत होती है। दादा कामरेड (1941), देशद्रोही (1943), दिव्या (1945) पार्टी कामरेड (1946), मनुष्य के रूप (1949) अमिता (1956), झूठा सच (1958-60), बारह घण्टे (1963), अप्सरा का श्राप (1965), क्यों फंसे (1968), संकट मोचक (1969) और मेरी तेरी उसकी बात (1974) यशपाल की औपन्यासिक कृतियाँ हैं। यशपाल का औपन्यासिक सृजन चार दशकों में व्याप्त है। उनका अनुभव लोक एक रस नहीं है। उसमें समाज, संस्कृति, इतिहास, राजनीति और मानव जीवन के विविध पक्षों की रंगत है। यही वजह है कि उनके उपन्यासों में जहां एक ओर समाजशास्त्री की भांति सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण है वहां ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रचित उपन्यासों में इतिहासकार की गहन सूझबूझ भी है। उनका राजनीतिक चिन्तन मार्क्सवादी दर्शन से अभिभूत है इसलिए उनके कुछ उपन्यास राजनीति केन्द्रित हो गए हैं। उनका औपन्यासिक सृजन जिस भूमिका पर हुआ है उसमें उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता और आधुनिकताबोध गहन रूप में प्रकट हुआ है। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में भी अतीत वर्तमान से असंपृक्त नहीं रहा है। उनमें भी युग-चेतना और आधुनिकता बोध उतनी ही गहराई से प्रस्तुत हुआ है जितना सामाजिक और राजनीतिक चेतना के उपन्यासों में। 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही' और 'पार्टी कामरेड-गीता' यशपाल के राजनीतिक चेतना के उपन्यास हैं। 'दादा कामरेड' में यशपाल की बदलती राजनीतिक चेतना और प्रेम और यौन विषयक नई परिकल्पना परिलक्षित होती है। राजनीति और प्रेम का अनूठा संगम इस उपन्यास का वैशिष्ट्य है। हिन्दी कथा-साहित्य में राजनीति और प्रेम के समन्वित रूप को प्रस्तुत करने वाला यह कदाचित् प्रथम उपन्यास है। जैनेन्द्र के 'सुनीता' उपन्यास की भांति यह उपन्यास पर्याप्त चर्चा का विषय रहा है। इस उपन्यास की भांति ही 'देशद्रोही' में भी राजनीतिक चिन्तन और

रोमैंटिक बोध है। 'दादा कामरेड' में लेखक ने आतंकवादियों के जीवन पर प्रकाश डालकर साम्यवादी व्यवस्था के प्रति आस्था व्यक्त ही है और 'देशद्रोही' में साम्यवादी दल के प्रति जनता में व्याप्त भ्रांतियों का निराकरण है। राजनीतिक पृष्ठभूमि पर अवलम्बित इस उपन्यास की कथावस्तु सन् 1942 के भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और कम्युनिस्ट पार्टी की गतिविधियों से सम्बन्ध रखती है। 'पार्टी कामरेड' में सन् 1942 से 1946 तक की भारतीय राजनीतिक गतिविधियों का चित्रण है। सन् 1946 के आम चुनाव और बम्बई के नौसैनिक विद्रोह पर उपन्यास का प्रतिपाद्य विशेष रूप में आधारित है। 'झूठा सच' और 'मेरी तेरी उसकी बात' यशपाल के वृहद् उपन्यास हैं। इनमें देश के सामाजिक, राजनीतिक वातारण को ऐतिहासिक यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। देश के विभाजन की पृष्ठभूमि पर आधारित यशपाल का 'झूठा सच' व्यापक फलक का उपन्यास है। 'मनुष्य के रूप', 'क्यों फंसे', 'संकट मोचक' और 'बारह घण्टे' यशपाल के सामाजिक चेतना के उपन्यास हैं। 'मनुष्य के रूप' को छोड़कर ये तीन लघु उपन्यास यशपाल की कमज़ोर रचनाएं हैं। इन उपन्यासों में न विषय वैविध्य है, न ही किसी प्रकार की गहरी अनुभूति और वैचारिक प्रौढ़ता ही। शिल्प की दृष्टि से भी ये रचनाएं कमज़ोर हैं। 'मनुष्य के रूप' इस कोटि के उपन्यासों में कुछ सीमा तक आश्वस्त करता है। इस उपन्यास का सृजन यद्यपि राजनीतिक पृष्ठभूमि पर किया गया है किन्तु औपन्यासिक कथ्य की अन्तःधारा आद्यन्त सामाजिक है। उच्च, मध्यवर्गीय और निम्न मध्यवर्गीय समाज की स्थितियां और मूल्य चेतना की यथार्थ अभिव्यक्ति इस उपन्यास में हुई है। 'दिव्या', 'अमिता' और 'अप्सरा का श्राप' यशपाल के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में रचित उपन्यास हैं।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में यशपाल का कृतित्व असाधारण महत्व का है। उन्होंने अपने उपन्यासों में युग जीवन तथा उसके संघर्षों का चित्रण किया है। उनका उद्देश्य वर्तमान समाज में व्याप्त रूढ़ मूल्यों की रिक्तता को उखाड़कर सामने लाना है। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में अपनी विशिष्ट विचारधारा और सर्जनात्मक शक्ति के कारण यशपाल ने अपनी अलग पहचान कायम की है। प्रेमचन्द ने अपने अन्तिम उपन्यास 'गोदान' में आदर्शवाद को खंडित करके जिस यथार्थवादी दृष्टि को ग्रहण किया था, उस परम्परा की ओर उन्मुख होकर समृद्ध करने का श्रेय यशपाल को है। उन्होंने अपने उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ का यथातथ्य चित्रण किया है और इसमें आर्थिक विषमता को प्रमुख स्थान दिया है। यशपाल ने अपनी समस्त शक्ति पूंजीवाद पर प्रहार करने और सामंतीय व्यवस्था की रिक्तता को उद्घाटित करने में लगाई। मार्क्सवादी चिन्तन से प्रभावित होने के कारण उनकी रचनाओं में सामन्ती अथवा पूंजीवादी व्यवस्था से उत्पन्न वैषम्य के फलस्वरूप उत्पीड़ित मानवता की कराह की कथा वर्णित है। यशपाल के उपन्यासों में मानव निष्ठा और मानव-मूल्यों का अटूट सिलसिला दृष्टिगत होता है। उनके उपन्यासों में राजनीति और रोमांस की सामाजिक समस्याओं के सन्दर्भ में अभिव्यक्ति हुई है उनका समग्र उपन्यास साहित्य समाजोन्मुख है। उन्होंने कहीं भी आत्मोन्मुख और समाज निरपेक्ष अनुभवों की अभिव्यक्ति नहीं की है। यशपाल के बाद हिमाचल प्रदेश में हिन्दी उपन्यासकारों की लम्बी कतार है जिन्होंने हिन्दी उपन्यास साहित्य को समृद्ध करने में योग दिया है।

यहां मैं हिमाचल प्रदेश में जन्मे अथवा कार्यरत हिन्दी उपन्यासकारों के औपन्यासिक सृजन का सर्वेक्षण प्रकाशन क्रम की दृष्टि से करना युक्तियुक्त समझता हूं ताकि हिमाचल प्रदेश

में रचित हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझा जा सके ।

छटा दशक

यशपाल के सन् 1941 में प्रकाशित उपन्यास 'दादा कामरेड' के बाद लगभग डेढ़ दशक तक हिमाचल के हिन्दी उपन्यास साहित्य में कोई अन्य उपन्यास प्रकाशित नहीं हुआ। हिन्दी के स्थापित उपन्यासकार यशपाल को यदि हिमाचल के उपन्यास साहित्य से किनारे रखकर देखें तो यहां सन् 1953 तक कोई भी प्रकाशित उपन्यास नज़र नहीं आता। यशपाल के बाद छठे दशक में हिमाचल में हिन्दी उपन्यास की शुरुआत कैलाश भारद्वाज के सन् 1954 ई० में प्रकाशित उपन्यास 'मीठा ज़हर' से होती है। 'मीठा ज़हर' एक लघु उपन्यास है जिसकी विषयवस्तु हत्या के रहस्य से सम्बन्ध रखती है । उपन्यास में तीन चरित्र हत्या के रहस्य की घटना को अपने-अपने ढंग से प्रस्तुत करते हैं और अपनी जान बचाने की फिक्र में दुर्घटना की जिम्मेदारी शेष दो चरित्रों पर डालने की कोशिश करते हैं । उपन्यास का कथानक संगठन और अभिव्यंजना-शैली प्रभावोत्पादक है, किन्तु सन् 1954 में प्रकाशित इस उपन्यास के बाद उनका कोई भी उपन्यास प्रकाश में नहीं आया । इसी दशक में रामकृष्ण कौशल के हिन्दी उपन्यास प्रकाशित हुए । उनके अब तक छः उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। छठे दशक में इनके तीन उपन्यास— 'कल्पना', 'ये सपने ये रातें' और 'पथ के राही' प्रकाश में आते हैं। उनके उपन्यासों में विषय-वस्तु की विविधता दिखाई देती है । 'ये सपने : ये रातें' युवक युवतियों के भावावेशपूर्ण विचारों, महत्वाकांक्षाओं और प्रेमानुभूतियों से सम्बन्ध रखता है । 'पथ के राही' कौशल का सन् 1951 ई० में प्रकाशित उपन्यास है। यह उपन्यास हृदय में उठने वाली उन उत्ताल तरंगों पर लिखा गया है जिन्हें मनुष्य सामाजिक मर्यादाओं के भय से सागर की भांति गम्भीर रह कर अपने भीतर समेटे रखता है। उपन्यासकार ने किशोर और कमला; कृष्ण और उषा के वैवाहिक जीवन की तनावपूर्ण स्थितियों के माध्यम से इसे उद्घाटित किया है। उपन्यास का सृजन 1947 के विभाजन के समय हिन्दू-मुस्लिम दंगों की पृष्ठभूमि और परिवेश को लेकर हुआ है । विभाजन के समय किस प्रकार शीला जैसी नारियों का शीलभंग करने की कुचेष्टा की गई, इसके संकेत उपन्यास में यत्र-तत्र विखरे पड़े हैं।

इस प्रकार छठे दशक में उक्त दो उपन्यासकारों के उपन्यासों से ज़ाहिर होता है कि हिमाचल का हिन्दी उपन्यास घुटनों के बल सरक रहा था। राष्ट्रव्यापी हिन्दी उपन्यास इस समय विकास के कई सोपान पार करके हिन्दी उपन्यास साहित्य को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की कृतियाँ दे चुका था, यथा—प्रेमचन्द का 'गोदान', अज्ञेय का 'शेखर : एक जीवनी', यशपाल का 'झूठा सच', जैनेन्द्र का 'त्याग पत्र', अमृतलाल नागर का 'बूंद और समुद्र'। हिमाचल का उपन्यास इस समय जासूसी, अय्यारी, प्रेम, कुण्ठा, वर्जना की दुनिया में ही विचरण कर रहा था।

सातवां दशक

सातवें दशक में किशोरीलाल वैद्य का 'तट के बन्धन' (1963), रामकृष्ण कौशल का 'चढ़ती पगडंडियां अनथके पाँव' (1965), विजेन्द्र दुसाज का 'सूना आंचल : बिखरे मोती' (1965) मनसाराम अरुण का 'देवङ्गना' (1967) हरदयाल नास्तिक का 'लहरें और तिनके'

ये उपन्यास प्रकाश में आते हैं। इसी दशक में दो अन्य उपन्यासकार राष्ट्र व्यापी हिन्दी उपन्यास के मानचित्र पर उभरकर सामने आये जो एक अर्से तक हिमाचल से सम्बद्ध रहे। वे हैं—मोहन राकेश और निर्मल वर्मा। मोहन राकेश 'विशप कॉटन स्कूल-शिमला' में अध्यापक रहे और उन्होंने अपनी रचनाओं में हिमाचल के जीवन को भी स्थान दिया है। निर्मल वर्मा का जन्म शिमला में हुआ और प्रारंभिक शिक्षा भी यहीं हुई। उच्च अध्ययन संस्थान-शिमला में कुछ अर्से तक रहे। पिछले वर्ष यशपाल सृजन पीठ के अध्यक्ष के पद पर भी वह शिमला में रहे। वैसे भी पहाड़ की प्रकृति को निर्मल वर्मा ने सशक्त रूप से अपनी रचनाओं में उतारा है। वे समय-समय पर हिमाचल आते रहे हैं और रचना और जीवन दोनों स्तरों पर यहां के पहाड़ों से जुड़े हैं।

मोहन राकेश के तीन उपन्यास 'अंधेरे बन्द कमरे, (1961) 'न आने वाला कल' (1968) और 'अंतराल' हैं। 'अंधेरे बंद कमरे' में प्रमुख रूप में दाम्पत्य जीवन के तनाव, अन्तर्द्वन्द्व और टकराहट को अभिव्यक्ति प्रदान की गई हैं। राकेश ने स्वतंत्रता के पश्चात् देश में सांस्कृतिक गतिविधियों के दांव-पेचों के साथ पारिवारिक जीवन के अंधेरे कोने सूक्ष्मता के साथ अनावृत किये हैं। सातवें दशक में राकेश पहले कथाकार हैं जिन्होंने स्त्री-पुरुष सम्बन्धों और तनावों को खुली आंखों से देखने की कोशिश की है। 'न आने वाला कल' में अस्तित्व की चिंता में घुलते जाते पात्रों का विशद अंकन किया गया है। अस्तित्व की समस्या को लेकर लिखा गया यह उपन्यास मिशनरी स्कूल के अध्यापक मनोज से संबंध रखता है। मनोज के त्याग पत्र की घटना नितांत वैयक्तिक है किन्तु राकेश ने इसे जिस तरह विन्यस्त किया है उससे वह वैयक्तिकता के वृत को तोड़कर सामाजिक हो गयी है। मनोज त्रासद अनुभवों से गुज़र कर अकेलेपन को भोगता है। स्कूल और गृहस्थ दोनों जगह उसका अकेलापन उसके पीड़ा बोध को गहन से गहनतर बनाता जाता है। उपन्यास में सभी नारी पात्र शोभा, बानी, शारदा आदि स्वातंत्र्य चेतना के कारण किसी के 'इस्तेमाल की चीज़' नहीं होना चाहते। उनका अस्तित्व बोध इतना सक्रिय है कि वे सदैव अनुभव करती हैं कि वे मनुष्य हैं पदार्थ नहीं। इस प्रकार आलोच्य उपन्यास में मानवीय संबंधों के अकेलेपन को आधुनिक जीवन की विसंगतियों के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। 'अंतराल' में दाम्पत्य संबंधों को भिन्न स्तर पर देखा गया है। श्यामा और कुमार के बीच संबंधों की जटिलता और उनके अभावों को लेखक ने सूक्ष्मता से परखा है।

निर्मल वर्मा के चार उपन्यास 'वे दिन' (1964) 'लाल टीन की छत', 'एक चिथड़ा सुख' और 'रात का रिपोर्टर' प्रकाशित हैं। 'वे दिन' यूरोप की महायुद्धोत्तर पीढ़ी के संत्रास, घुटन, मूल्यहीनता, अकेलापन, मृत्यु का आतंक और सम्बन्धों की अर्थहीनता को रेखांकित करने वाला उपन्यास है। कथानायक और रायना का संबंध हो चाहे रायना और उसके पति का—एक प्रकार का अलगाव और अजनबीयत इनमें बराबर बनी रहती है। इस उपन्यास में परम्परागत उपन्यासों की भाँति कोई बंधी बंधाई कथा नहीं है। कथा-विन्यास, चरित्र-चित्रण और औपन्यासिक संरचना में लेखक ने परम्परागत औपन्यासिक ढांचे को तोड़ा है। 'एक चिथड़ा सुख' में लेखक ने किशोर मन को समझने और व्यक्त करने की सार्थक कोशिश की है। असफल कैरियर, तथा शिथिल दाम्पत्य जीवन के मध्य सामंजस्य स्थापित न करने के फलस्वरूप वह बाथ टब में अपनी कलाई की नस काटकर आत्महत्या कर देता है। इस उपन्यास में सीमित अनुभव तीव्र अनुभूति के साथ प्रस्तुत हुए हैं। भाषा की लयात्मकता और कथानक के मोड़ पाठक को विशेष रूप से आकर्षित करते हैं। 'लालटीन की छत' में पहाड़ी परिवेश की अनुगूंज है। क्योंकि इसमें

बचपन की स्मृतियों को जीवंत करने का प्रयास है इसलिए शिमला का परिवेश स्वाभाविक रूप से विद्यमान है। निर्मल वर्मा अपनी रचनाओं में कथ्य के अनुरूप 'रूप' के प्रति बेहद सजग रहते हैं। इसलिए उनकी रचनाओं में गद्य का अनूठा रूप दिखाई देता है। आपातकाल की पृष्ठभूमि में लिखा गया निर्मल वर्मा का नया उपन्यास 'रात का रिपोर्टर' पिछले वर्ष ही प्रकाशित हुआ है।

इस अवधि में किशोरीलाल वैद्य का उपन्यास 'तट के बन्धन' सन् 1963 ई० में प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत उपन्यास प्रेम की आदर्श परिकल्पना पर आधारित है। उपन्यास का प्रारम्भिक चरण विद्यालय प्रशासन की विकृतियों पर तीव्र प्रहार करता है और नायक के दृढ़ व्यक्तित्व की ओर संकेत करता है, उपन्यास का नायक कार्त्तिकेय, अध्यापक के व्यवसाय में संलग्न रहकर भी अपनी रचना धर्मिता में लीन रहता है; फिर भी अध्यापक के नाते जीवन के कुछ मूलभूत आदर्शों की स्थापना अनिवार्य समझता है। इसी कारण उसमें विद्यालय में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा प्रशासकों के दूषित व्यवहार के प्रति वितृष्णा ही नहीं विद्रोह भी है। विद्यालय जीवन के अतिरिक्त उपन्यास का कथ्य कार्तिकेय की निजी ज़िन्दगी की ओर मुड़ता है। उसके समक्ष विवाह के प्रश्न के साथ वधू चयन का प्रश्न उत्पन्न होता है। वधू चयन सम्बन्धी उसकी निजी भावुकतापूर्ण दृष्टि है। संयोग से वह अपनी सहपाठिनी अनीता के सम्पर्क में आता है। उसकी बहन तारी उसके व्यक्तित्व की भावुकता को समझकर अनीता से उसके सम्बन्ध प्रगाढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वह अनीता के प्रेम में अभिभूत हो जाता है। किन्तु अपनी रचना की सर्व-प्रिया पात्र शुचिता के प्रति वह मन और प्राण से समर्पित है। अनीता के निष्कलुष प्रेम और व्यवहार में उसे शुचिता के दर्शन होने लगते हैं। उपन्यास को पढ़ते हुए पाठक यह अनुभव करने लगता है कि कार्त्तिकेय अनीता से विवाह कर लेगा। किन्तु जीवन में सदैव प्रत्याशित ही नहीं होता। नायक तट के बन्धनों को स्वीकार करता हुआ विजातीय सलमा से विवाह कर लेता है।

उपन्यास का बहुत बड़ा हिस्सा कार्त्तिकेय की कल्पनाओं और महत्वाकांक्षाओं को लिए हुए है। उपन्यास के इस हिस्से में वह शुचिता नाम के कल्पित चरित्र से अभिभूत है। दार्शनिकता के कोहरे में आच्छादित यह चरित्र उपन्यास का बहुत-सा भाग घेर लेता है। उपन्यास के इसी भाग में कार्त्तिकेय के निश्छल, मर्यादित और संयत प्रेम का सम्पूर्ण बिम्ब सामने आता है। कार्त्ति-केयव सलमा से विवाह के बाद यकायक सभी चरित्र लुप्त हो जाते हैं। केवल सलमा उपन्यास के अंतिम तीन पृष्ठों में अस्वभाविक रूप में छा जाती है। इन अंतिम पृष्ठों में लेखक की उपन्यास को पूर्ण करने की आतुरता का आभास होता है। विजातीय सलमा से आकस्मिक विवाह और वधू रूप में उसे घर के सभी लोगों द्वारा बिना रोक-टोक स्वीकार करना आधुनिकता की चुनौती भले ही हो किन्तु मध्यवर्गीय कार्त्तिकेय जैसे लोगों के आम घरों की बात नहीं हो सकती। दूसरी ओर जब नायक अपनी पूर्व प्रेमिका को विस्मृत ही नहीं कर पा रहा है और उसका आकर्षण पूर्ववत बना रहता है तो फिर इस प्रकार के निर्णय के समक्ष प्रश्नचिह्न-सा लगता है। इन सीमाओं के होते हुए उपन्यासकार की उपलब्धि अनीता के चरित्र की सृष्टि है।

विजेन्द्र दुसाज का उपन्यास 'सूना आंचल बिखरे मोती' सन् 1965 ई० में प्रकाश में आता है। संदर्भित उपन्यास का सृजन सम्बन्धों को लेकर हुआ है। इसमें कहीं प्रेम और काम सम्बन्ध की द्वन्द्वात्मक स्थिति का निरूपण है और कहीं परिवार के दूसरे रिश्तों की स्वार्थ पर आधारित नींव का चित्रण। इसके अतिरिक्त वैधव्य का दुःख भी लेखक ने उकेरा है। उपन्यास-कार ने विजय और उसकी मौसेरी बहन आशा के प्रेम-सम्बन्धों के बीच सामाजिक सम्बन्धों की

नींव को हिलते दिखाया है। विजय और आशा का गहन सम्पर्क प्रेम सम्बन्ध से बढ़कर दैहिक तृप्ति की सीमा तक पहुँचने लगता है। प्रेम के इस अमर्यादित स्वच्छन्द और नैसर्गिक सम्बन्ध के द्वारा लेखक ने प्रकारान्तर से यह सवाल उठाया है कि क्या सामाजिक सम्बन्धों के क्षेत्र में प्रेम का यह रूप वांच्छनीय है ? प्रेम की प्रगाढ़ता में भी वे दोनों सामाजिक रिश्तों को पग-पग पर बाधक मानते हैं। उपन्यास में वांगयी प्रसंग मार्मिक बन पड़ा है। उपन्यासकार ने यह स्थापित करने का प्रयास किया है कि वय: संधिकाल में लड़के-लड़कियों का अधिक सम्पर्क उन्हें प्रेम और काम सम्बन्धों के घेरे में डाल देता है। जब वे अनुभव करते हैं कि रिश्तों की दीवारें बाधा डाल रही हैं तो वे उस स्थिति में या तो कुण्ठाग्रस्त हो जाते हैं या वास्तविक जीवन से पलायन कर 'इन्ट्रोवर्ट' (अन्तर्मुखी) और 'न्योरोटिक' होकर जीवन जीने के लिए विवश होते हैं। उपन्यास के प्रारम्भ में लेखक ने जिस चुनौती भरे कथ्य को उठाया है वह अंत तक पूर्णत: गायब हो गया है। उपन्यास की संरचना, स्थितियां एवं घटनायें सामान्य कोटि की हैं और उन पर आवेशात्मक और भावात्मक मनोवृतियों की परतें चढ़ाई गयी हैं।

'लहरें और तिनके' हरदयाल नास्तिक का उपन्यास है। इस उपन्यास में ग्रामीण जीवन की समस्याओं को चित्रित किया गया है। निर्धन परिवार का रेलू किस प्रकार गांव से शिमला नगर में जाकर बर्तन मांजने की नौकरी करता है तथा उसे किस स्थिति से गुज़रना पड़ता है इसका लोमहर्षक चित्रण उपन्यास में हुआ है। कतिपय पात्रों की शिमला, दिल्ली, बम्बई तक की यात्रा काल्पनिक अधिक और यथार्थपरक कम लगती है। उपन्यास प्रारम्भ में जिस ग्रामीण परिवेश को मूर्तिमान करता है वह उत्तरोत्तर कमज़ोर होता गया है। फिर भी ग्रामीण जीवन की समस्याओं को उकेरने वाला यह उपन्यास हिमाचल के प्रारम्भिक उपन्यासों में सामाजिक चेतना की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। भले ही कथा संयोजन की दृष्टि से यह रचना कमज़ोर बन पड़ी है।

'चढ़ती पगडंडियां : अनथक पांव' रामकृष्ण कौशल का सन् 1965 ई० में प्रकाशित उपन्यास है। इस उपन्यास में हिमाचल के आंचल में बसे किन्नर प्रदेश के जन-जीवन को सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से उभारा गया है। लेखक ने राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय सुरक्षा और भावात्मक एकता को औपन्यासिक ताने-बाने में बुनकर सीमान्त क्षेत्र किन्नर प्रदेश में देशद्रोही लामाओं के कुकृत्यों को सामने लाया है। उपन्यास में प्रोफेसर शुक्ला जहां कालेज में पढ़ाते हुए भावात्मक एकता पर निबन्ध लिखकर जनजागृति लाना चाहते हैं वहां दूसरी ओर उनकी पत्नी तपश्चर्या का जीवन यापन करती हुई किन्नर प्रदेश की बीहड़ सीमाओं में रहकर देशद्रोहियों के षड्यंत्र को अनावृत करती है और उन्हें पकड़वाने में पुलिस की मदद करती है। अमेरिका में उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले युवक सुनील की शिमला और किन्नर प्रदेश की यात्रा के द्वारा लेखक ने इस प्रदेश के सांस्कृतिक जीवन का अवलोकन करवाया है। इसके अतिरिक्त उपन्यास में साम्प्रदायिकता के कारणों और सत्ता वर्ग की आत्मकेन्द्रित स्थिति को भी सामने लाया है।

संतराम शर्मा का 'उसी छत के नीचे' उपन्यास प्रेम और काम सम्बंधों का चित्रण करता है। 1967 ई० में प्रकाशित इस उपन्यास में लेखक ने निशा और राजकुमार के वय: संधिकाल में दैहिक सम्बन्ध से जन्मे बालक सुधीर के मानसिक अंतर्द्वन्द्व और उसके जीवन की व्यथा गाथा को रेखांकित किया है। सुधीर के जीवन की त्रासदी के साथ कतिपय अन्य समानान्तर कथायें जुड़ी हैं। निशा और राजकुमार का प्रेम और दैहिक सम्बन्ध, रीता का राजकुमार के प्रति

आकर्षण और उससे सम्भोग करने की उत्कट लालसा, रीता का घर के नौकर पंचम के साथ यौन सम्बन्ध, रीता के पुत्र सुरेन्द्र और लता नाम की युवती का यौन सम्बन्ध आदि। इस प्रकार सारा उपन्यास सम्भोग दृश्यों से भरपूर है। सभी चरित्र यौन कुण्ठाओं, विकृतियों और अस्थिर मानसिकता से ग्रस्त हैं। जीवन का कोई मूल्य उनके पास नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे जीवन का मनोरंजन उनके पास केवल एक ही है। इसलिए बार-बार देह के साथ खेलते हैं। उसी के सम्मोहन में डूबे रहना चाहते हैं। इसके लिए उनका वंशानुक्रम और परिवेश दोनों उत्तरदायी हैं। इसे लेखक ने इन कथासूत्रों के जरिये दर्शाया है। उपन्यासकार ने रीता सम्बन्धी प्रसंग के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि आज के समाज में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं रही है जो आर्थिक लाभ और सुख-सुविधाओं के लिए नैतिक मूल्यों को ताक पर रखने में शर्म नहीं समझते।

उपन्यास के सभी चरित्र रुग्ण मानसिकता को लिये हुए हैं। जीवन की स्वस्थ दृष्टि कदाचित् उनके पास है ही नहीं। देह की मांसलता ही उनका आकर्षण है। जैसा एक चरित्र चाहता है वैसा ही दूसरा कर देता है। इस तरह उपन्यास को 'रुग्ण मानसिकता का दस्तावेज' कहा जा सकता है। उपन्यास जीवन के मूल्यगत महत्वपूर्ण पक्ष को, कहीं भी, किसी रूप में प्रकट नहीं करता।

सन् 1967 ई० में ही मनसाराम अरुण का उपन्यास 'देवाङ्गना' प्रताशित हुआ। प्रस्तुत औपन्यासिक कृति का सृजन हिमालय के जन-जीवन की सामाजिक समस्याओं को लेकर हुआ है। स्वातंत्र्योत्तर काल में सन् 60 तक की अवधि के मध्य हिमाचल के जन-जीवन की धार्मिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को आधार बनाकर लेखक ने इस कृति के माध्यम से वर्णाश्रम और जाति विधान विषयक मूल्य-बोध को प्रेम और विवाह के संदर्भ में उठाया है। जगदीश और जानकी को लेखक ने नई मूल्य-चेतना के प्रतीक के रूप में दिखाया है। दोनों पुरातन जड़-मूल्यों को उखाड़ फेंकने के लिए संघर्ष करते हैं किन्तु जितनी गहनता जानकी के संघर्ष में है उतनी जगदीश के संदर्भ में नहीं दिखाई देती। लेखक ने पुराने और नये मूल्यों के संघर्ष को दो पीढ़ियों के चरित्रों के द्वारा सामने लाया है। उपन्यास के अन्त में जानकी की आत्महत्या अथवा हिम समाधि, जीवन के प्रति लेखक के अनास्थावादी दृष्टिकोण को प्रकट करती है और लेखक की जिजीविषा की धारणा पर प्रश्नचिन्ह लगाती है। चार खण्डों में विभक्त उपन्यास का कथ्य मन में उठने वाली भाव-लहरियों और उनके घात-प्रतिघात को प्रकट करता है। उपन्यास का लक्ष्य युगों-युगों के प्रवाह के मध्य मानवता के वक्ष-स्थल पर जमी जड़ मान्यताओं और अंधविश्वासों की काई को खुरच कर बाहर निकालना है, जिससे भावी संतति उस चिपचिपी काई पर से फिसल-कर अपंग न हो जाए। उपन्यासकार अरुण इस लक्ष्य के प्रतिपादन में सफल रहे हैं। उपन्यास में भाषा सौष्ठव अनूठा है जो हृदय की सूक्ष्म भावनाओं को प्रकट करने में सक्षम है।

सातवें दशक के अन्त में बी० आर० पद्म का ऐतिहासिक उपन्यास 'जेबुन्निसा' सन् 1970 में प्रकाश में आया है। पद्म ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में रचित इस उपन्यास में नवीन कल्पनाएं की हैं। मुगलकाल के शासक औरंगजेब और उसकी बेटी जेबुन्निसा के व्यक्तिगत जीवन को उपन्यास का विषय बनाया गया है। यह लघु उपन्यास प्रेम की संकरी राहों से गुजरता हुआ औरंगजेब और जेबुन्निसा के पारस्परिक संघातों की कथा प्रस्तुत करता है। इतिहास और कल्पना को समन्वित करने की लेखक ने कोशिश की है। तद्‌युगीन परिवेश कृति में पूर्ण जीवन्तता के साथ

मूर्तिमान हुआ है। परिवश को जीवन्त बनाने के प्रयास में उर्दू, फारसी भाषा के अधिक प्रयोग से भाषा असहज हो गई है, जिससे सामान्य पाठक उसके आनंद से वंचित रह जाता है। डॉ० हरिचरण शर्मा ने उपन्यास के सम्बन्ध में सम्मति दी है, "उपन्यास में तत्कालीन वातावरण जितनी स्वच्छता से उभरा है, उतने चरित्र नहीं उभर पाए हैं किन्तु फिर भी विविध संदर्भों में हमें छूते हैं क्योंकि उनकी सहज निश्छलता में जो दर्द है उसकी लकीर कहीं भीतर-ही-भीतर हमारे दिल में भी खिंचती जाती है। अभिव्यंजना कौशल के लिए प्रयुक्त भाषा, संदर्भों से जुड़ी अवश्य है किन्तु आज के पाठक के लिए सेतु बनने में बाधा उत्पन्न करती है।"

सातवें दशक के उपन्यासों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि हिमाचल का हिन्दी उपन्यास विकास की ओर अग्रसर होने लगता है। 'तट के बंधन', देवाङ्गना', 'लहरें और तिनके' में सामाजिक चेतना उभरी है । 'चढ़ती पगडंडियां : अनथक पांव' में राष्ट्रीय चेतना मुखर हुई है और उपन्यास ग्रामांचल को समेटता है। इसमें किन्नर जनपद के जन-जीवन की झांकी प्रस्तुत की गई है। 'सूना आंचल बिखरे मोती' और 'उसी छत के नीचे' मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास हैं। सन् 60 के बाद हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में स्त्री-पुरुष, पति-पत्नी और प्रेमी-प्रेमिका के दैहिक सम्बन्धों पर कदाचित् पहली बार खुलकर दृष्टिपात किया गया है। यही वजह है कि प्योरिटन आलोचकों ने यौन सम्बन्धों पर लिखे उपन्यासों की कटु आलोचना भी की है। राष्ट्रीय फलक पर देखें तो रमेश बक्षी का 'बैसाखियों वाली इमारत', शरद देवड़ा का 'टूटती इकाइयां', महेन्द्र भल्ला का 'एक पति के नोट्स', श्रीकांत वर्मा का 'दूसरी बार' आदि उपन्यास यौन-सम्बन्धों पर लिखे गए हैं। इस कड़ी में 'सूना आंचल : बिखरे मोती' और 'उसी छत के नीचे' देखे जा सकते हैं।

आठवां दशक

आठवें दशक का उपन्यास-साहित्य भावना के अतिरेक से कटकर बुद्धि और संवेदना के स्वीकार से शक्तिशाली बनता हुआ प्रतीत होता है। भावना का अतिरेक किसी भी जटिलपरिस्थिति को गहराई से देखने में बाधा उत्पन्न करता है। यही वजह है कि इस दशक के उपन्यास ने भावना के अंतः प्रवाह से बचकर पूर्ववर्ती दशकों से अपनी पृथक् पहचान कायम करने की कोशिश की है। हिमाचल के हिन्दी उपन्यास के प्रारम्भिक दो दशकों में जो छायावादी मानसिकता के दायरे दिखाई देते हैं उन्हें परवर्ती उपन्यासकारों ने किसी न किसी रूप में अवश्य ग्रहण किया, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। कुछ उपन्यासकारों ने रोमांटिक बोध को विस्तार देकर उसे सामाजिक आधार पर चित्रित किया तो कुछ ने उसे सर्वथा वैयक्तक स्तर पर चित्रित करने की कोशिश की। रोमांस के प्रति पिटे-पिटाये मार्ग को तिरस्कृत कर एक नवीन प्रकार की रोमांस परम्परा को प्रश्रय मिला। प्रेम संबंध को कभी वैधव्य जीवन से जोड़ा गया तो कभी वेश्या से। इसी प्रकार कुछ लेखकों ने ऊँच-नीच, जाति-पांति और विभिन्न सम्प्रदाय के लोगों से जोड़कर उसे व्यापक आयाम और सामाजिक आधार देने के प्रयत्न किये। आठवें दशक के उपन्यासों में जीवन के विविध संदर्भों को विविध आयामों में अनेक स्तर पर उद्घाटित करने की कोशिश की गई। विवेच्य उपन्यासों का कुछ न कुछ सामाजिक आधार अवश्य है और वह आधार यथार्थ की नींव पर अवस्थित है। इस दशक के उल्लेखनीय उपन्यासकार हैं—मस्तराम कपूर, प्रेमलता ठाकुर, ओंकार राही, रमेश शर्मा, कृष्णकुमार नूतन, सुदर्शन वशिष्ठ, सुशील कुमार फुल्ल, गंगाराम राजी, शांता कुमार, संतोष शैलजा, उत्तम परमार, बी० आर० पद्म,

रामकृष्ण कौशल। इन उपन्यासकारों ने जिन सामाजिक समस्याओं को उठाया है वे विधवा-विवाह, वेश्या समस्या, अनमेल विवाह, दहेज समस्या, प्रेम एवं यौन संबंध, जाति भेद, आर्थिक वैषम्य, आर्थिक शोषण तथा अपराध मनोविज्ञान से संबंध रखते हैं। इन उपन्यासकारों में समाज के प्रति दायित्व बोध दिखाई देता है। इस दशक के उपन्यासों में नया भाव बोध मुखर है और युगीन परिस्थितियों का यथार्थ अंकन भी हुआ है।

सन् 1971 ई० में प्रकाशित 'विपथगामी' मस्तराम कपूर का प्रथम उपन्यास है। आठवें दशक में ही उनके तीन अन्य उपन्यास—'एक अटूट सिलसिला' (1977), 'तीसरी आंख का दर्द' (1979), 'नाक का डाक्टर' (1980) प्रकाशित हुए हैं। उपन्यासों की संख्या और विषय वैविध्य की दृष्टि से मस्तराम कपूर हिमाचल के उपन्यासकारों में प्रमुख स्थान रखते हैं। 'विपथगामी' में उन्होंने एक ऐसे यथार्थ की सृष्टि की है जिसे सामान्य जीवन में अविश्वसनीय अथवा विचित्र कहा जा सकता है। उपन्यास में दो तरह की ज़िंदगी जीने वाले पात्रों का चित्रण है। एक ओर यदुनाथ और उसकी बेटी सुधा है जो ग्रामीण जीवन के मूल्यों को ग्रहण किए हुए बम्बई जैसे महानगर में सुन्दर की तलाश में पहुंचते हैं। दूसरी ओर लता और सुरेन्द्र है जो नगर के जीवन से वाकिफ़ है। फिर भी वहां की बदसूरत ज़िंदगी को बदलने की कोशिश में स्वयं टूटते रहते हैं। लिली एक ऐसी बेवस युवती है जो ग्रामीण ज़िंदगी जी कर घर की आर्थिक स्थिति और निर्धनता के कारण रोजी रोटी की तलाश में महानगर बम्बई में पहुंचती है, किन्तु वहाँ कुमार जैसे तस्कर के चंगुल में फंसकर तस्करी के अड्डे में लोगों को आकर्षित करने और देह व्यापार करने के लिए चार दीवारी में बंद कर दी जाती है। उपन्यास की समग्र घटनायें और स्थितियां सुरेन्द्र के इर्द-गिर्द घूमती हैं। लता को उपन्यासकार ने उस आधुनिक के रूप में चित्रित किया है जो पढ़-लिखकर केवल आर्थिक रूप में स्वावलम्वी होकर ही रहना चाहती है, अपितु वह उस प्राचीन धारणा का भी खण्डन करती है कि औरत पूर्ण स्वतंत्र और अकेली नहीं रह सकती। वह धर्मशास्त्रों के उन प्रसंगों के प्रति विद्रोह प्रकट करती है जिसमें नारी को अबला कहा गया है। इसी कारण वह विवाह संस्था में अनास्था व्यक्त करती है। सुरेन्द्र भी समूची व्यवस्था के प्रति विद्रोह कर उसे बदलने के स्वप्न देखता है। जीवन की विसंगतियों को भोगते हुए सुरेन्द्र और लता बदसूरत दुनिया को खूबसूरत बनाने के लिए संघर्ष करते हैं' किन्तु उनका यह स्वप्न टूटता है। इसलिए सुरेन्द्र यह अनुभव करता है कि धर्म, ईश्वर, कानून और सामाजिक संरचना सभी दुहरे मानदण्डों को लिए हुए हैं जो बाहर से कुछ और तथा भीतर से कुछ और हैं।

मस्तराम कपूर के दूसरे उपन्यास 'एक अटूट सिलसिला' (1977) में राजाओं और उनके वंशजों, देशी विदेशी साहवों और समाज के जड़मूल्यों की दलदल में फंसे और दबे उन युवक-युवतियों की व्यथा-कथा है जो स्वातंत्र्योत्तर काल में भी आर्थिक उत्पीड़न और शोषण से मुक्त नहीं हो सके। शोषण का यह अटूट सिलसिला युवा पीढ़ी की अज्ञानता और दिशाहीनता के कारण असीम हो गया। लेखक ने कांगड़ा क्षेत्र के तीन गांव के सन्दर्भ में शोषण के इस सिल-सिले को उजगर किया है। इसे उपन्यास में यशवंतसिंह और पं० दयाराम जैसे जमींदारों के माध्यम से व्यक्त किया है, जो काश्तकारों का निर्ममता से शोषण करते हैं। उपन्यासकार ने गांव के पिछड़ेपन और राजनीतिक चेतना के अभाव को पंचायत के चुनाव के संदर्भ में प्रकट किया है। गांव की सरपंची और लम्बरदारी को वर्षों से यशवंत और पं० दयाराम निर्विरोध संभाले

रखते हैं ? उनके प्रभाव और हैसियत के आगे कोई चुनाव लड़ने का साहस नहीं करता क्योंकि सभी ग्रामीण किसी न किसी रूप में आर्थिक जरूरतों के कारण पराधीन हैं । यशवंत और दयाराम के विरुद्ध युवा पीढ़ी संघर्ष करती है । किन्तु उनके षड्यंत्र के आगे युवा परास्त होते हैं । मस्तराम कपूर ने इस उपन्यास में गांव को बचाने का एक रास्ता दिखाया है । वह रास्ता है—गांव में जन जागृति पैदा करना, नगर मोह त्याग कर गांव के जीवन में घुल-मिल जाने की कोशिश करना । कहीं जातिवाद, वर्णाश्रम व्यवस्था पर प्रहार है तो कहीं सामंतवादी मूल्यों के विरुद्ध युवा पीढ़ी का संघर्ष । श्रम करने वाले किसानों की जिंदगी का चित्रण कपूर ने नितान्त कुशलता से किया है । किन्तु उनका संघर्ष निष्क्रिय और सतही बनकर रह गया है । भले ही उसके कारण कुछ भी रहे हों ।

'तीसरी आंख का दर्द' (1979) में मस्तराम कपूर ने 'एक अटूट सिलसिला' की कथा को उन्हीं पात्रों के माध्यम से विकसित किया है । इस उपन्यास में उन सभी चरित्रों को लिया गया है जिन्हें उपन्यासकार समय-सीमा के कारण मंझधार में छोड़ आया था अथवा उनके जीवन व्यापी संघर्ष की कहानी अधूरी रह गई थी । स्वातन्त्र्योत्तर भारत के सातवें दशक के बाद 'जनता' द्वारा सत्ता हस्तात्तरण करने तक की परिस्थितियां उपन्यास में ग्रामीण जीवन से जोड़ कर देखी गई हैं । आपातकाल की परिस्थितियों का अंकन भी कथा-सूत्रों में आंशिक रूप में दिखाने की कोशिश की गई है । उपन्यास में दलगत राजनीति, पारिवारिक विघटन, गांव में नगर जीवन के प्रभाव से युवकों का शहरों में रोटी-रोजी की तलाश में जाना, पुस्तकालय आदि नई चीजों की स्थापना से जन चेतना जगाना आदि दिखाया है । 'अटूट सिलसिला' के ज़मीन मालिकों और पूंजीपतियों के पराभव को इस उपन्यास में दर्शाया गया है । दिवाकर और रूपा संबंधी प्रसंग इसमें प्रारम्भ से लेकर अन्त तक चलता है । इनके अन्तर्जातीय विवाह से दिवाकर के मात-पिता बिरादरी से वहिष्कृत हो जाते हैं । बदलते मूल्यों के प्रभाव के फलस्वरूप किस प्रकार से उच्चकुल की ब्राह्मणी, दिवाकर की मां आहिस्ता-आहिस्ता रूपा के हाथ का भोजन तक खाने लगती है । विवाह और जाति विषयक मूल्यों के बदलाव को यहां गांव के परि-प्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है । उपन्यास के अंत में उपन्यासकार देश की परिस्थितियों को चिंतन के धरातल पर प्रस्तुत करता है । अमर की डायरी के जिन अंशों को मुरली रमा के सामने पढ़कर सुनाता है वे वर्तमान परिस्थितियों में विभिन्न समस्याओं के हल कहे जा सकते हैं— "आदमी की आजादी, समता और लोकतंत्र की भावना के लिए पहली शर्त है कि सामान्य मनुष्य की शक्तियों और क्षमताओं में हमारी आस्था होनी चाहिए ।" उपन्यासकार की केवल यही चिंता है कि "भूख, रोग और शोषण के शिकार करोड़ों मनुष्यों को जीने का अधिकार दिलाने के लिए कौन नये शस्त्र का आविष्कार करेगा । अमर 'सर्वहारा' वर्ग को उठाने के संघर्ष में स्वयं टूटता है पर संघर्ष नहीं टूटता, उसे मुरली और रमा जारी रखते हैं । अतएव 'तीसरी आंख का दर्द' आर्थिक वैषम्य, जाति विधान, समाज की रुग्ण मानसिकता, पुरानी जड़ परम्पराओं के विरुद्ध केवल आक्रोश ही व्यक्त नहीं करता है बल्कि विद्रोह भी करता है । लेखक ने प्रस्तुत कृति में ग्रामीण जीवन के उत्थान-पतन, सफलता-असफलता, सवर्ण-असवर्ण के संघर्ष को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है । ग्रामीण जीवन की कटुता-सौहार्द्र, स्वार्थपरता-सहानुभूति, परिवर्तन की अकुलाहट या जीवन की जड़ता, पुराने और नये मूल्यों का संघर्ष—इन्हें लेखक ने अपनी संतुलित दृष्टि से सक्षम रूप में अभिव्यंजित किया है । 'नाक का डाक्टर' कपूर का 1980 ई० में प्रकाशित हास्य-व्यंग्य प्रधान

लघु उपन्यास है। इसमें 'कल्पना' नाम की लड़की के माध्यम से और व्यंग्य प्रधान रोचक शैली में आज के समाज का यथार्थ प्रकट किया है।

आठवें दशक के प्रारम्भ में ही सन् 1971 ई० में प्रेमलता ठाकुर का 'भृंग-कल्पना के प्रेम पत्र' शीर्षक उपन्यास आता है। संदर्भित लघु उपन्यास में लेखिका ने समाज में व्याप्त झगड़ों, दंगों और आत्महत्याओं के कारणों में स्त्री और धन को प्रमुख माना है। लेखिका ने निजी वक्तव्य में यह भी स्पष्ट किया है कि "प्यार का कौन-सा रूप है जो इस द्वेष, लड़ाई-झगड़ों से युक्त समाज को बदल कर एकता, शांति और आदर्श युक्त समाज का निर्माण कर सकता है।" इस वक्तव्य के अनुरूप औपन्यासिक कथ्य का सृजन कृति में परिलक्षित नहीं होता। पत्रात्मक शैली में लिखे प्रस्तुत उपन्यास में सतीश और कल्पना के पत्रों के जरिये, प्रेम, विवाह, संयम आदि पर आदर्शवादी दृष्टि से विचार किया गया है। घटना-विन्यास, संवेदना, भाषा और शिल्प की दृष्टि से यह सामान्य कोटि की रचना है। उपन्यास केवल एक प्लेटोनिक प्रेम कहानी बनकर रह गया है।

इस कालखण्ड में ही ओंकार राही उपन्यास के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। इस दशक में उनके दो उपन्यास 'शवयात्रा' (1972) और 'किनारे के लोग' (1975) प्रकाशित हुए हैं। 'शवयात्रा' में लेखक ने 1946-47 के भारत की ऐतिहासिक घटनाओं को अपनी संतुलित दृष्टि से उपन्यास की पृष्ठभूमि के रूप में इस प्रकार विन्यस्त किया है कि वह कोरा इतिहास नज़र न आये। 1946 में क्रिप्स के नेतृत्व में केबिनेट मिशन के आगमन से लेकर लार्ड माउन्टबेटन द्वारा सत्ता हस्तान्तरण करने तक की राजनीतिक परिस्थितियों के लेखे-जोखे को उपन्यासकार ने प्रमुख चरित्र उन्माद के जरिये व्यक्त किया है। उपन्यास में उन्माद को आज़ादी की लड़ाई के ऐसे साक्षी के रूप में चित्रित किया है जिसन स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष किया और जेल भी गया। आज़ादी-प्राप्ति के बाद जीवन से जूझते हुए वह थक गया है। बीस-बाईस वर्ष पश्चात् वह अपने विगत जीवन का प्रत्यावलोकन करने के लिए विवश होता है क्योंकि उसके मित्र की बेटी शिवानी अपने शोध-प्रबन्ध को पूर्ण करने के लिए उसके अतीत को कुरेदती चलती है। राजनीतिक और ऐतिहासिक घटनाओं की नीरसता को कम करने के लिए ओंकार राही ने यशपाल की औपन्यासिक प्रविधि की भांति रोमांस की सृष्टि की है। यशपाल के उपन्यास राजनीति, क्रांति और रोमांस को समानान्तर चलाते हैं। 'देशद्रोही', 'दादा कामरेड' जैसे उपन्यास इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं। ओंकार राही ने राजनीतिक घटनाओं के एक-एक रेशे को उधेड़ने के साथ उन्माद के मन में उतार चढ़ाव, आकर्षण-विकर्षण को भी उपन्यास में चित्रित किया है। ऐतिहासिक घटनाओं की नीरसता को कम करने के लिए जिस रोमांस की सृष्टि की गई है, वह यथार्थ की भूमि पर अवस्थित न होकर लेखक की कोरी कल्पना प्रतीत होती है। उन्मन-उन्माद सम्बन्धी प्रसंग 'अननेचुरल फैन्टासी' नज़र आता है। उन्मन वही सब कुछ करती है जो उसकी मां करती आयी है। वह उन्माद के संयम को खण्डित करती है। प्रेम की आदर्श परिकल्पना को तोड़कर उसे 'सैक्स' की ओर उन्मुख करती है। उन्मन सही मार्ग नहीं दिखाती अपितु उसे भटकाती है। राग-विराग में झकोले खाता हुआ वह सन्यासी बनकर चला जाता है, किन्तु पुनः लौट आता है। उपन्यास में विभिन्न पात्रों के माध्यम से लेखक ने विवाह संस्था की रिक्तता उद्घाटित की है। आशा उन्माद की सहपाठिनी है जो पति को तलाक देकर जी रही है। दूसरी ओर नीलिमा है जिसके विवाह से पूर्व गर्भ ठहर जाता

है और विवाह पूर्व गर्भ गिराने के अनंतर विवाहित जीवन अत्यन्त सुखपूर्वक व्यतीत करती है। निन्नी कई पुरुषों को भोग कर भी पतिव्रत और गृहस्थ धर्म के निर्वाह का दम्भ भरती है। उसका पति हर रात नई युवतियों की देहों से खेलता है। इतना ही नहीं, पत्नी के पर-पुरुषों के साथ सम्बन्धों की पूर्ण जानकारी रखते हुए भी वह विरोध नहीं करता। उपन्यास के ये कुछ ऐसे प्रसंग हैं जो वैवाहिक जीवन की सार्थकता-निरर्थकता का न केवल विश्लेषण करते हैं अपितु उसकी सार्थकता पर भी प्रश्न चिह्न लगाते हैं। राजनीतिक घटनाओं को समेटने वाला यह उपन्यास पाठकों को वैचारिक और अनुभूति के धरातल पर झकझोरता तो है किन्तु राजनीतिक घटनाओं को समेटने वाले अंश आरोपित से लगते हैं। राजनीतिक प्रसंगों को उपन्यास से निकाल देने पर भी कथ्य खण्डित नहीं होता बल्कि अधिक रोचक लगता है। 'किनारे के लोग' ओंकार राही का सन् 1975 में प्रकाशित दूसरा उपन्यास है।

ओंकार 'राही' के बाद सन् 1974 ई० में० में रमेश शर्मा का उपन्यास 'बर्फ़ की राख' प्रकाश में आता है। उपन्यासकार ने पर्वतारोहण और सागर सैर के बहाने हिमाचल की सांस्कृतिक विरासत को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा है। मुख्य कथा की नींव डालने के लिए लेखक ने ऐतिहासिक घटनाओं को पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत किया है। उपन्यास में हिमाचल का सम्पूर्ण इतिहास—राजाओं की जय-पराजय, आज़ादी के लिए संघर्ष, आज़ादी की प्राप्ति, हिमाचल में पूर्ण राज्यत्व और हिमाचल के प्रगति के पथ पर अग्रसर होने तक की प्रमुख घटनाओं के रूप में मूर्तिमान हो उठा है। रमेश शर्मा का यह उपन्यास इस दशक के उपन्यासों में भिन्न अस्तित्व बनाये हुए है। यह भिन्नता इस अर्थ में है कि यह उपन्यास युवक-युवतियों की महज कहानी बनकर नहीं रहता, बल्कि इन कथाओं को इस कौशल से विन्यस्त किया गया है कि हिमाचल का सम्पूर्ण इतिहास बिना ऐतिहासिकता को खण्डित किये हुए सामने आता है। इस प्रकार यह हिमाचल का इतिहास और उपन्यास दोनों ही बन गया है। इतिहास में जो इतिवृत्तात्मकता होती है उससे उपन्यास नीरस और बोझिल बन जाता है। उससे बचने की लेखक ने भरसक कोशिश की है फिर भी उपन्यास में कहीं-कहीं लम्बे वक्तव्य सामान्य पाठक को उकता देने वले बन गये हैं। पृथक्-पृथक् अस्तित्व वाले इक्तीस खण्ड चित्रों को उपन्यासकार ने शिल्प-चातुर्य से विन्यस्त किया है। पृथक्-पृथक् प्रतीत होने वाले ये खण्ड-चित्र परस्पर जुड़कर संश्लिष्ट रूप में सामने आए हैं इन खण्ड-चित्रों में हिमाचल के पहाड़ों में छिपी प्रकृति की असीम गरिमा, अनन्य सौन्दर्य, मानव के अन्तर में छिपे उद्‌गारों के उतार-चढ़ाव, राष्ट्रीय एकीकरण के परिचायक देवी-देवताओं के मन्दिरों का वर्णन, स्वतंत्रता संग्राम में हिमाचल की भूमिका, वर्तमान युग की अवसरवादी राजनीति और मानवीय मूल्यों की आकांक्षा से संघर्ष करने वाले पात्रों का चित्रण है। प्रोफेसर सुनीत और कल्याणी उपन्यासकारों के विचारों का निर्वहण करने वाले चरित्र हैं। कल्याणी और सुनीत सम्बन्धी कथासूत्र उपन्यास में प्रारम्भ से लेकर अंत तक चलता है। ये दोनों बुद्धिजीवी वैचारिक साम्य के कारण एक-दूसरे से बंधे हैं। कर्नल नगेश अपनी बेटी को विवाह करने को कहता है किन्तु वह बंधन में बंधना उचित नहीं समझती। किन्तु उपन्यास के अंत में जब सुनीत मातृ-पितृ विहीन चार वर्षीय बालक को कल्याणी के सामने लाकर, बालक की भावनाओं को आहत होने से बचाने लिए उसका पिता बन जाता है तब शहीद पिता के इस बालक की मां बनने के लिए कल्याणी भी तैयार हो जाती है। रिटायर्ड सुनीत और कल्याणी के बेसहारा बालक की खातिर पति-पत्नी बनने के निर्णय से कर्नल नगेश प्रसन्न होकर

बेटी के विवाह की चिंता से मुक्त होता है। सुनीत और कल्याणी के इस कथासूत्र के अतिरिक्त दूसरा कथासूत्र विक्रमसिंह और दिकतमा के प्रेम सम्बन्ध को लेकर है। इस प्रेम सम्बन्ध के ज़रिये उपन्यासकार ने यह स्थापित किया है कि राष्ट्र धर्म के निर्वहण के लिए प्रेम का उत्सर्ग करना अनिवार्य है। विक्रमसिंह के दाम्पत्य जीवन की कटुता और तनावपूर्ण स्थितियों के द्वारा प्रकारान्तर से लेखक ने यह निष्कर्ष सामने लाया है कि गृहस्थ जीवन में पत्नी के निरादर और उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण के कारण वह दिकतमा के रूप पर मुग्ध होता है। वार्षिक अवकाश में भी घर नहीं जाना चाहता। लेखक ने स्थान-स्थान पर दाम्पत्य जीवन की सार्थकता-निरर्थकता विभिन्न पात्रों के माध्यम से स्पष्ट की है। तीसरा कथासूत्र कल्लू अस्पताल की नर्स खेमती, नारायणी की बहन अम्वदा, विदेशी युवती कैरोलीन, संन्यासी और पंचायत सरपंच चैनाराम को लेकर है। उपन्यासकार ने कथाओं को एक विस्तृत 'कैनवैस' में बाँधा है। पात्रों के चरित्रांकन में पर्याप्त सफलता मिली है। प्रमुख पात्रों में कल्याणी, सुनीत, दिकतमा, विक्रमसिंह के चरित्रों को लेखक ने नितांत बारीकी से उभारा है। दिकतमा की अंतिम परिणति मार्मिक और हृदस्यस्पर्शी है।

कृष्णकुमार 'नूतन' का सन् 1975 ई० में 'मन एक प्यासी मछली' शीर्षक उपन्यास प्रकाश में आता है। नूतन के अब तक तीन उपन्यास प्रकाशित हुए हैं—'मन एक प्यासी मछली', 'संस्कार' और 'मृदुला'। नूतन के उपन्यासों में भावात्मक और आवेशात्मक मनोवृत्तियों का उफान है। पाठकों के मनोरंजन की दृष्टि से सम्भावित-असम्भावित घटना-चक्रों का गुम्फन उपन्यासों में दिखाई देता है। यही कारण है कि उनके उपन्यासों के 'पात्र यथार्थ की भूमि से खिसक कर कल्पना-लोक में विचरण करने लगते हैं। 'मन एक प्यासी मछली में राग' और विराग' 'भोग' और 'योग' की राह में 'झटखोले खाते युवक आनन्द' की कथा है जो निर्धनता के कारण अपनी प्रेमिका से विवाह नहीं कर पाता और उस आघात को सहन न करने के कारण वैरागी बन जाता है। साधु बनने के अनन्तर उसके जीवन में दो युवतियां आती हैं। 'कंचन' और 'माला'। इन दोनों युवतियों के जीवन की रक्षा के लिए क्रमशः प्रेमी और पति होने का अभिनय करता है। उपन्यास के कथासूत्र बम्बई और बनारस जैसे शहरों में घूमते हैं। उपन्यास मनोरंजनप्रद है। भाषा सरल है किन्तु औपन्यासिक कला का शून्य है। कुल मिलाकर यह कृति कौतूहल, चमत्कृति और उत्तेजनात्मक स्थिति तो उत्पन्न करती है, किन्तु सुरुचिपूर्ण मानस की स्वस्थ खुराक नहीं दे पाती। 'संस्कार' शीर्षक उपन्यास में भी उनकी 'थीम', 'भोग' और 'योग' के अन्तर्द्वन्द्व में घूमती हैं। प्रमोद, प्रमिला, आशा, दीपक और रमेश आदि प्रमुख पात्रों के ज़रिये लेखक ने औपन्यासिक कथ्य को विन्यस्त किया है। 'मन एक प्यासी मछली' की अपेक्षा इस उपन्यास में कथा तत्व को कुशलता और कलात्मकता से विन्यस्त किया है किन्तु घटनाओं के अम्बार और संयोगों की सृष्टि उपन्यास की कथा को अतिशय काल्पनिक बनाने में सहायक हुए हैं। कथा रस को नूतन महत्वपूर्ण मानते हैं। इसलिए यहाँ भी संभावित-असंभावित घटनाओं से पाठक का मनोरंजन किया गया है। नूतन का तीसरा उपन्यास 'मृदुला' नारी समस्या पर केन्द्रित है। 'मृदुला' के जीवन पर केन्द्रित यह उपन्यास श्रृंगार और सस्पैंस से पूर्ण है। हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों में जो कौतूहल, चमत्कृति और प्रेम का अतिशय वर्णन दिखाई देता है, नूतन के ये उपन्यास उस युग की कोटि के उपन्यासों में आते हैं। कुछ सीमाओं के बावजूद नूतन के उपन्यासों में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक जिज्ञासाभाव रहता है।

'मनमंथन' गंगाराम शर्मा का प्रथम उपन्यास है। उपन्यास में प्रकाशन वर्ष अंकित नहीं

है। संभवत यह उपन्यास 1975 ई० में प्रकाशित है। संदर्भित उपन्यास मजदूरों, श्रमिकों, छोटे दुकानदारों, बेकारी से पीड़ित युवकों की समस्याओं को लेकर लिखा गया है। व्यासलिक प्रोजेक्ट में कार्यरत मजदूरों के संदर्भ में लेखक ने कथ्य का ताना-बाना बुना है। 'जीवन' अपने साथियों के साथ नव-निर्माण समिति का सदस्य बनकर श्रमिकों के उत्थान के लिए संघर्ष करता है, अफसरों की मनमानियों का विरोध करता है। जीवन और उसकी मित्र सुनीता 'माई' के आश्रम में सक्रिय सहयोग देकर समाज के प्रताड़ित, उपेक्षित, घृणित और स्वयं अपनी ही जिन्दगी से तंग आए लोगों को जीवन जीने के लिए प्रेरित करते हैं। उपन्यास की कथा दो छोरोंसे समानांतर रूप से अग्रसर होती है। कभी मजदूरों का संघर्ष है तो कभी आश्रम की कार्य पद्धति का वर्णन। उपन्यास में कृष्ण, रामप्रसाद, गनीदीन, रमेश, झगड़ू आदि ऐसे चरित्र हैं जो भरपेट रोटी नहीं प्राप्त कर सकते। उनकी निर्धनता पारिवारिक तनाव और कलह के कारण बनती है। सुनीता, जीवन और गायत्री पाठक पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में व्यवस्था की विसंगतियों को तो प्रकट किया है किन्तु उस व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह का स्वर मुखर नहीं हुआ है जो आम आदमी को 'डिह्यूमनाइज' करने की साजिश में शरीक है। हाँ, इतना अवश्य है कि लेखक ने 'वस्तु स्थिति' को सामने लाकर आम आदमी की ज़िन्दगी को बेहतर बनाने के लिए कुछ सवाल उठाए हैं। किन्तु समाधान हवा में उड़ते नज़र आए हैं। फिर भी लेखक की यह कृति पर्याप्ति सीमा तक आश्वस्त करती है।

'आतंक' सुदर्शन वशिष्ठ की सन् 1976 ई० में प्रकाशित प्रथम औपन्यासिक कृति है। इसका सृजन महाभारत के युद्ध की आतंकपूर्ण पृष्ठभूमि और तद्‌युगीन जनजीवन की परि-स्थितियों को लेकर हुआ है। लेखक ने पौराणिक कथानक के साथ उपन्यास की घटनाओं का ताल-मेल बिठाने की कोशिश की है ताकि महाभारत कालीन परिवेश समूचे रूप में साकार हो सके। उपन्यास की घटनाओं के संयोजन में उपन्यासकार की दृष्टि दो बिन्दुओं पर स्थिर रही है। एक महाभारतकालीन के समाज के चित्रण पर और दूसरे युद्ध की भयावह परिस्थितियों में आतंकित समाज पर। महाभारतकालीन समाज का चित्रण करने के लिए लेखक ने जिन कथाओं की परिकल्पना की है उनमें एक कथा पुष्कर और उसके परिवार से सम्बन्ध रखती है। यह कथा जाजलि और उसकी बेटी रक्षिता से जुड़कर उपन्यासकार के लक्ष्य की स्थापना की ओर अग्रसर होती है। युद्ध की विभीषिका और लोमहर्षक दृश्यों के आर्तनाद को उपन्यासकार ने बड़ी सजी-वता से प्रस्तुत किया है। गर्भवती रक्षिता का शकुन्त की लाश को संग्राम भूमि में पागलों की भाँति तलाश करना, रक्तरंजित उसका चेहरा, पति वियोग में सूखे गाल, मैली धोती, रक्त से सने कपड़े और हाथ-पांव, रोना-चीखना, लाशों के बीच पति की तलाश में इधर-उधर भागना— सभी हृदय विदारक स्थितियों का निरूपण है। सुदर्शन वशिष्ठ का यह उपन्यास बीते युग की ही कहानी नहीं कहता समकालीन संदर्भ में भी इसे देखा-परखा जा सकता है। युद्ध न पहले कभी अच्छा समझा गया और न ही आज अच्छा समझा जाता है। युद्ध विनाश के लिए उत्तरदायी होता है। इसलिए शांति स्थापना के प्रयासों में ही जीवन की सार्थकता निहित है। टकराहट और संघर्ष जितने विनाश के सूचक हैं उतने ही पतनोन्मुख भी। उपन्यास का शीर्षक 'आतंक' सार्थक और सटीक है। उपन्यास लेखक की परिपक्व दृष्टि को प्रकट करता है। सामाजिक दायित्व का निर्वाह करने वाली यह कृति अपनी अलग पहचान कायम करती है।

आठवें दशक में ही कथाकार सुशीलकुमार फुल्ल हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में अवतरित

होते हैं। सुशीलकुमार फुल्ल के चार बाल-उपन्यास प्रकाशित हुए हैं—'टकराती लहरें', 'पर्वतों के ऊपर', 'ललकार' तथा 'वापसी'। इन बाल उपन्यासों के अतिरिक्त चार अन्य उपन्यास 'कहीं कुछ और', 'मिट्टी की गंध,' 'फूलों की छाया' और 'नागफांस' प्रकाशित हुए हैं। उनके बाल-उपन्यास प्रेरणादायी पृष्ठभूमि के साथ सामने आए हैं। यहां हमारा लक्ष्य बाल साहित्य की चर्चा करना नहीं है। बाल उपन्यासों को यदि अलग रखा जाए तो 'कहीं कुछ और' को सुशीलकुमार फुल्ल का प्रथम उपन्यास कहा जा सकता है। सन् 1978 में प्रकाशित फुल्ल का 'कहीं कुछ और' रोमांटिक बोध का उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखक ने विवाह पूर्व प्रेम के विवाहोपरान्त पुन: उमड़ पड़ने तथा तज्जन्य उलझनमयी स्थितियां चित्रित की हैं। लेखक ने 'भावना' और 'अजीत' के प्रणय संबंध के माध्यम से इसे स्पष्ट किया है। अजीत को लेखक ने एक ऐसे चरित्र के रूप में उभारा है जो एक ओर 'भावना' के संग रहकर प्रेमिका से प्राप्त होने वाले सुख का उपभोग करना चाहता है और दूसरी ओर प्राणप्रिया मानकर पत्नी की सामाजिक प्रतिष्ठा की भी आकांक्षा करता है। वह अपने इस दुहरे व्यक्तित्व के कारण न तो गृहस्थ जीवन में सुखी रह पाता है न ही उसमें प्रेमी का वह 'बोल्डनैस' है जिससे वह प्रेमिका को प्राप्त कर सके। उसका प्रेम लुक-छिपकर किए जाने वाले, कायर और नपुंसक व्यक्ति का प्रेम है। उसके प्रेम में अनुभूति की तरलता न होकर देह-सुख की चाह अधिक है। प्रेम और काम के संघर्ष में झकोले खानेवाला अस्थिर चित् युवक अजीत उपन्यास के अन्त में न्यूगल नदी में डूबकर आत्महत्या कर लेता है। अजीत की भांति उपन्यासकार ने कई अन्य चरित्रों की सृष्टि की है जो काम कुंठित हैं और देह क्षुधा की परितृप्ति के लिए सामाजिक मर्यादाओं की घोर निन्दा करते हैं और वैवाहिक मूल्यों का प्रतिकार करते हैं। अजीत की पत्नी पूणम, प्रो० कपिल और रिपुदमन को लेखक ने सामाजिक मर्यादाओं का निर्वाह करने वाले चरित्रों के रूप में चित्रित किया है। आज सामाजिक सम्बंध क्यों टूट रहे हैं ? पति-पत्नी लुक-छिपकर उन्मुक्त भोग की ओर क्यों उन्मुक्त हो रहे हैं ? इसके लिए उपन्यासकार ने आज के भौतिकवादी दृष्टिकोण को उत्तरदायी ठहराया है। अपने इस दृष्टिकोण को व्यक्त करने के लिए लेखक ने विभिन्न वर्गों के पात्रों की सृष्टि की है। नरेन्द्र कोहली से प्रेम विवाह करने वाली युवती अपने गांव के किसी परिचित व्यक्ति के साथ भाग जाती है। विवाहिता तृष्णा प्रो० कपिल को चाहती है। अजीत पत्नी के होते हुए भी भावना से देह भोग की इच्छा रखता है। प्रो० हल्लड़ 'लाल स्कर्ट' नामक युवती को चाहता है। सामाजिक सम्बंधों का विश्लेषण करने वाले रोमांटिक बोध के इस उपन्यास के कथ्य का ताना-बाना हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा जिले के पालमपुर क्षेत्र की सीमित परिधि में बुना गया है। रोमांटिक बोध के उपन्यास में नारी की देह की उस तीखी बू का विश्लेषण है जिसमें यौन संबंधों के असंयत और अमर्यादित रूप के कारण नारी केवल देह भोग की वस्तु और पुरुष को वासना के पंक में सिर से लेकर पांव तक सना हुआ चित्रित किया है।

आठवें दशक के उत्तरार्द्ध में शान्ताकुमार के दो उपन्यास—'मन के मीत' और 'कैदी' प्रकाशित हुए हैं। उनके उपन्यास विषयवस्तु की नवीनता के कारण विशेष रूप से आकर्षित करते हैं। उनके ये उपन्यास जेल जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। उनमें जेल जीवन की अभिशप्त और भयावह स्थितियों का यथार्थ चित्रण है। 'मन के मीत' शान्ताकुमार का सन् 1977 ई० में प्रकाशित प्रथम उपन्यास है। सन्दर्भित उपन्यास में उपन्यासकार ने जेल जीवन के यथार्थ को उद्घाटित किया है। उपन्यास की कथाओं की धुरी है—गीता। गीता के जीवन की त्रासदी के

ज़रिए लेखक ने आधुनिक दण्ड-व्यवस्था पर व्यंग्य किया है। दण्ड विधान का लक्ष्य अपराधी को दण्डित करके समाज में अपराध के प्रति विमुखता पैदा करना है किन्तु इस विधान की तह तक पहुंचने के बाद उद्देश्य की पूर्ति न होने का बोध होता है।

इस उपन्यास में लेखक ने नारंग और कैलाश की आदर्श चरित्रों के रूप में सृष्टि की है। इन पात्रों के माध्यम से प्रेम-सम्बन्धों के चित्रण में लेखक ने जिस आदर्श का पोषण किया है वह स्वाभाविक ढंग से विकसित होता है। किन्तु राजू और रीता सम्बन्धी प्रसंग उतना स्वाभाविक नहीं बन पड़ा है। राजू का रीता के लिए त्याग और चोरी का मार्ग त्यागकर दस हज़ार रुपये के उपहार की वस्तुएं नदी में प्रवाहित कर देना बनावटी और अस्वाभाविक जान पड़ता है। गीता के मन की स्थितियों का चित्रण लेखक ने जिस क्षमता से किया है वैसी गम्भीरता राजू-रीता प्रेम-प्रसंग में नहीं दिखाई देती। इसी वजह से वह प्रसंग आरोपित लगता है। शामू का भिखारी बनना तो स्वाभाविक है किन्तु संयोग से पुलिस के सिपाहियों द्वारा राजू के भाग जाने पर उसका पकड़े जाना और जेल की हवा खाना अस्वाभाविक लगता है।

प्रारम्भ से लेकर उपन्यास के अन्त तक कथ्य को संयोगों से भले ही मुक्त नहीं किया जा सका। फिर भी लेखक ने उपन्यास में एक अछूते विषय को उठाया है। कैदियों की ज़िन्दगी और उन पर ढाये जाने वाले अत्याचारों को उजागर करने वाले उपन्यास हिन्दी में बहुत कम लिखे गए हैं। इस दृष्टि से उपन्यासकार शन्ताकुमार अपनी अलग पहचान कायम करते हैं।

'कैदी' शान्ताकुमार का सन् 1978 ई० में प्रकाशित उपन्यास है। यह औपन्यासिक कृति अपराध मनोविज्ञान (क्रिमिनल साइकोलाजी) से सम्बद्ध कुछ सवाल उठाती है और उनका विश्लेषण करती है। अपराधी के मनोविज्ञान का विश्लेषण करने वाली इस कृति में विभिन्न कैदियों के जीवन-प्रसंगों के ज़रिये उपन्यासकार निष्कर्ष निकालता है, "मूल स्वभाव से कोई भी मनुष्य अपराधी नहीं होता। समाज और उसकी परिस्थितियां मनुष्य को अपराध के रास्ते पर धकेलती हैं। कुछ लोग उन परिस्थितियों से लड़कर भी अपना मार्ग ठीक बना लेते हैं, परन्तु अधिकतर अपराधी बन जाते हैं।"

उपन्यास में राजीव, अमर, सूरत, रामलाल, सोहन कुछ ऐसे ही कैदी हैं जो परिस्थितियों से घिरकर क्रोध के आवेश अथवा भावना के उन्माद में अपराध कर बैठते हैं। उपन्यास में राजीव केन्द्रीय चरित्र है जो सुशिक्षित और आदर्शवादी युवक होते हुए भी ऐश्वर्य और धन को महत्व देने वाली महत्वाकांक्षिणी पत्नी की आकांक्षाओं की पूर्ति करते-करते दिनों-दिन ऋण से दबता जाता है, किन्तु पत्नी की असीमित इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर पाता। इसी माध्यम से लेखक ने इंसानियत से जुड़े कुछ सवाल उठाए हैं। लेखक ने इस उपन्यास में यह स्थापित करने का प्रयास किया है कि कोई भी व्यक्ति भ्रष्ट और कलंकित नहीं है। कोई भी अपराध विपरीत परिस्थितियों की उपज है जिसमें घिरकर व्यक्ति भटक जाता है। जेल कर्मचारियों की रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, यहां तक कि कैदियों को दिये जाने वाले भोजन की वस्तुओं में हेरा-फेरी करने वाले, न्याय का डंका बजाते पुलिस कर्मचारियों पर इस उपन्यास में तीव्र कटाक्ष किया गया है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने कुछ प्रेम-प्रसंगों को भी दर्शाया है। इसमें कैलाश और गीता तथा राजू और रीता के प्रेम सम्बन्धों के चित्रण उल्लेखनीय हैं। प्रेमियों के इन जोड़ों का प्रेम मन की मैत्री (मन के मीत) पर आधारित है। इनके मन में 'घर' बसाने की एक परिकल्पना है किन्तु उनकी यह कामना साकार नहीं हो पाती। लेखक ने उपन्यास की कथाओं में बहुत से संयोगों की

सृष्टि की है। उपन्यास का पूर्वार्द्ध जितना सुगठित है उत्तरार्द्ध उतना ही कमजोर बन पड़ा है। यही कारण है कि उत्तरार्द्ध में कथासूत्र बिखरते दिखाई देते हैं। राजीव उपन्यासकार के विचारों का निर्वहण करने वाला चरित्र है। राजीव के माध्यम से लेखक यह स्थापित करना चाहता है कि एक अपराधी भी रोगी की तरह है। शरीर का रोगी अस्पताल में रखा जाता है और मन का रोगी जेल में। जो व्यवहार अस्पताल में एक रोगी से किया जाता है, वही व्यवहार जेल में कैदी को मिलना चाहिए। राजीव के माध्यम से लेखक यह स्पष्ट करता है कि आज तक किसी भी मां ने अपनी कोख से चोर व डाकू को जन्म नहीं दिया।

उपन्यासकार ने विभिन्न पात्रों के जरिये यह दर्शाया है कि व्यक्ति परिस्थितियों की चपेट में पेचीदा राहों पर चलकर अपराधी बनता है। शान्ताकुमार ने 'कैदी' में अपराधी बनने के कुछ मौलिक कारण तलाश करने की कोशिश की है और उनके कुछ समाधान भी प्रस्तुत किए हैं। उपन्यास में वस्तु पक्ष की एक-सूत्रता है। अत्यन्त रोचक, सांकेतिक, अर्थपूर्ण व्यंग्यों वाली भाषा में कहानी को कहते जाना लेखक की विशेषता है, जो पाठक को विशेष रूप में आकर्षित करती है।

सन्तोष शैलजा का 'अंगारों में फूल' उपन्यास सन् 1978 ई० में प्रकाश में आया। इस उपन्यास की संवेदना देश-भक्ति और देश-प्रेम के कारण भारतीय स्वाधीनता के संघर्ष में जूझते युवकों से सम्बन्ध रखती है। उपन्यास की कथा का ताना-बाना सन् 1897 में पूना में व्याप्त प्लेग की महामारी से सम्बन्धित है। उस समय जहां एक ओर जन-मानस प्लेग की महामारी से पीड़ित था वहां दूसरी ओर उस पीड़ा को चरम स्थिति तक पहुंचाने वाले अंग्रेज़ प्रशासकों का एक वर्ग था जो समय और स्थिति का लाभ उठाकर प्लेग की महामारी की आड़ में उत्पीड़ित पूना वासियों पर नाना प्रकार के अत्याचार ढा रहा था। मि० रैंड जैसे नृशंस अंग्रेजी प्रशासक पुलिस दल सहित लोगों के घरों में घुसकर नर-नारियों पर अमानवीय अत्याचार कर रहे थे और उनकी सम्पत्ति को लूट रहे थे। अंग्रेजी कानून के आतंक के कारण सामान्य जन मूक अवस्था में सब कुछ देख रहा था और सहन कर रहा था। पराधीनता के उस काल में क्रांतिकारी युवकों का एक ऐसा वर्ग भी पूना में मौजूद था जो अंग्रेजों से लोहा लेने के लिए कृत-संकल्प था। उपन्यास लेखिका ने अंग्रेजों के अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने वाले एक ही परिवार के तीन साहसी और क्रांतिकारी भाइयों की यशोगाथा और बलिदान के माध्यम से अंग्रेजी सत्ता की क्रूरता और भारतीय जन-मानस की पीड़ा का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

उपन्यास लेखिका सन्तोष शैलजा ने प्रस्तुत उपन्यास में यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि भावना की धरती की अपेक्षा कर्तव्य का अम्बर बहुत ऊंचा होता है। इसे उन्होंने दामोदर की मां, राधा और रुक्मणी जैसी बहुओं के चरित्रों के माध्यम से स्पष्ट किया है। दामोदर की मां आदर्श वीर भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है, जो अपने तीनों पुत्रों को देश की खातिर फांसी पर लटकते देखती है। इस अथाह अवसाद को वह गम्भीर सागर की भांति अपने में समेटती ही नहीं वरन् अपनी बहुओं को जीवन जीने के लिए उत्साहित और प्रेरित करती है। उपन्यास का कथानक यद्यपि पूना के सीमित घेरे से सम्बन्ध रखता है तथापि यह पूरे भारत की पराधीनता की स्थितियों को रेखांकित करता है। यह सुविचारित कथानक ऐतिहासिक सन्दर्भ लिए हुए है, फिर भी इतिवृत्तात्मकता और नीरसता का शिकार नहीं हुआ है। उपन्यासकार ने इस ऐतिहासिक कथ्य को कल्पना के रंगों में संजोकर सहज, सरल और आडम्बरहीन भाषा में नितान्त संवेदन-

शील ढंग से अभिव्यंजित किया है। प्रस्तुत कृति अपनी प्रेरणादायी पृष्ठभूमि के कारण आद्योपांत पठनीय बन पड़ी है, भले ही शिल्प की दृष्टि से इसमें कोई नवीनता और कलात्मकता न दिखाई देती हो।

उत्तम परमार का उपन्यास लेखन भी आठवें दशक के उतरार्द्ध में प्रारम्भ होता है। आठवें दशक में उनके दो उपन्यास 'मर्यादा' और 'श्रद्धा' प्रकाशित हुए हैं।

उत्तम परमार के उपन्यासों में भारतीय संस्कृति के शाश्वत मूल्यों का विश्लेषण है। भारतीय संस्कृति की पोषक होने के कारण लेखिका ने पाश्चात्य संस्कृति की विकृतियों को उद्-घाटित कर अपनी संस्कृति की गौरव-गरिमा और सम्पन्नता का गुणगान किया है। 'मर्यादा' उत्तम परमार का सन् 1978 में प्रकाशित प्रथम उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास कुछ मानवीय मूल्यों को लेकर लिखा गया है। प्रेम, सहानुभूति, दया, करुणा, सत्य आदि कुछ ऐसे शाश्वत मानवीय मूल्य हैं जिनके सार्थक निर्वाह के लिए उपन्यास के प्रमुख चरित्र प्रयत्नशील दिखते हैं। उपन्यास में लगभग सभी पात्र आदर्शवादी मूल्यों का निर्वाह करते हैं। विजय और श्याम को तो लेखिका ने इस कदर आदर्शवादी बनाया है कि उनमें मानव की सहज कमजोरियां भी दृष्टिगत नहीं होती। इसीलिए उपन्यास का सारा फलक गढ़ा-गढ़ाया और बनावटी-सा लगता है। उत्तम परमार का यह विश्वास है कि अच्छे कर्मों का फल अच्छा और बुरे कर्मों का फल बुरा होता है। यही कारण है कि विजय और श्यामा अपनी-अपनी मर्यादाओं का पालन करते हुए अन्त में वैवाहिक जीवन में बंधते हैं। विजय के पिता सोहनसिंह के विरुद्ध झूठी गवाही देने वाला चेतराम कुष्ठ रोग से पीड़ित होकर दर-दर भटकते और भिक्षा मांगते दिखाया है।

'श्रद्धा' उत्तम परमार का सन् 1980 में प्रकाशित दूसरा उपन्यास है। समीक्ष्य उपन्यास में गडरिये युवक अर्जुन और युवती नूरां की प्रेम कहानी है। अल्हड़, मस्त और उन्मुक्त प्रकृति में विचरण करने वाली गडरिया युवती के सौंदर्य पर सत्तर वर्षीय अशक्त राजा उससे विवाह करने के लिए तैयार हो जाता है। अपनी पारिवारिक सीमाओं और परिस्थितियों के कारण बेटी का पिता नखरत राजा के इस प्रस्ताव का विरोध नहीं कर पाता। नूरां का राजा से विवाह हो जाता है। मुरली का बेटा अर्जुन भी इस निर्णय के आगे कुछ नहीं कर पाता। अर्जुन-नूरां की प्रेम कहानी के समानान्तर एक दूसरी प्रेम कहानी राजा की बेटी दीपा और दीवार के बेटे प्रेमसिंह से सम्बन्ध रखती है। लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में नारी जीवन की कोमलता का सजीव चित्रण किया है। उपन्यास में प्रेम की वेदना गहन रूप में दिखाई देती है। मार्मिक प्रसंगों की अवतारणा करने के लिए लेखिका के पास सशक्त और हृदयस्पर्शी भाषा है। उपन्यास में समाज की किसी महत्वपूर्ण समस्या को नहीं समेटा गया है। केवल सफल-असफल प्रेम कहानियां हैं। नूरां के राजा के साथ विवाह के द्वारा लेखिका ने सामंतीय विलासिता को सामने लाने की कोशिश की है।

रामकृष्ण कौशल के दो अन्य उपन्यास इस दशक के अंतिम चरण में प्रकाश में आते हैं। 'सैलानी' कौशल का सन् 1978 ई० में प्रकाशित उपन्यास है। इस उपन्यास में मध्यवर्गीय अराजपत्रिक कर्मचारी अजीत की आर्थिक विषमताओं कुंठाओं और मानसिक ऊहापोह का चित्रण है। नगरों में कार्यरत लिपिक वर्ग अथवा कम वेतन पाने वाले लोगों की मानसिकता को लेखक ने उद्घाटित किया है। लेखक ने अजीत को एक ऐसे खण्डित व्यक्तित्व के रूप में चित्रित किया है जो अपनी परिवेशगत दुर्बलताओं के कारण यौन-कुण्ठाओं से ग्रस्त है। यह काम-कुण्ठाओं से ग्रस्त, अतृप्त और असफल वैवाहिक जीवन को रूपायित करने वाली कृति है।

'संयोग' कौशल की सन् 1980 में प्रकाशित औपन्यासिक कृति है प्रस्तुत कृति में आधुनिक समाज के मध्यवर्ग की युवक-युवतियों के वैयक्तिक जीवन की रूमानी प्रेम-कथा वर्णित है। उपन्यास का कथा-फलक दिल्ली और शिमला से संबंध रखता है। उपन्यास की कथावस्तु अत्यंत साधारण कोटि की है और घिसी-पिटी राह पर चलती है। कौशल ने इस उपन्यास में कल्पना का प्रयोग इस हद तक किया है कि यथार्थ की ज़मीन खिसकती-सी दिखाई देती है। उपन्यास की कथा सपाट शैली में आगे बढ़ती जाती है, उपन्यास के अंत में नितांत अस्वाभाविक ढंग से युवक-युवतियों, प्रेमी-प्रेमिकाओं की विवाह में परिणिति होती है। उपन्यास का इस प्रकार का अंत फार्मूला फिल्म की कथा का आभास देने लगता है।

आठवें दशक में बी० आर० पद्म के दो उपन्यास 'गांधारी' (1978) और 'शबनम' (1979) प्रकाशित हुए हैं। दोनों उपन्यासों का सृजन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर हुआ है। 'गांधारी' उपन्यास में इतिहास और संस्कृति के प्रमुख नारी पात्र गांधारी को आज के सामाजिक संदर्भों में प्रतिष्ठित किया है। 'शबनम' में इतिहास प्रसिद्ध खिलजी सुल्तान अलाउद्दीन के क्रूर और कोमल दोनों रूपों का चित्रण है। सिंहलद्वीप की राजकुमारी और चित्तौड़ नरेश रत्नसेन की रानी पद्मावती के अनुपम सौंदर्य की यशोगाथा सुनकर उसे प्राप्त करने की लालसा से उसने चित्तौड़ की ईंट से ईंट बजाने की कल्पना की थी। इसी ऐतिहासिक कथ्य को आधार बनाकर क्रूर अलाउद्दीन के अंतस में सुप्त भावनाओं का उद्घाटन है। अलाउद्दीन कठोर नृशंस और पाषाण हृदय था। नारी उसके लिए केवल मात्र मनोरंजन और भोग विलास की वस्तु थी किन्तु सुल्तान ने जब अपनी बेटी शबनम के यौवन से खिले रूप को देखा तो उसे बोध हुआ कि उसके खूंखार हृदय में एक कोना कोमल और भावुक भी है। लेखक ने विभिन्न प्रणय प्रसंगों के जरिये इस उपन्यास में मानवीय भावनाओं को अभिव्यक्ति दी है।

आठवें दशक के उपन्यास विषयक इस विवेचन से यह ज्ञात होता है कि इस काल खण्ड में हिमाचल के हिन्दी उपन्यास लेखन में विविधता और सम्पन्नता आई है। इस अवधि में सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, ग्रामांचल से जुड़े और आधुनिकता बोध के उपन्यास लिखे गये।

[रा० उ० मा० कन्या विद्यालय, बिलासपुर हि० प्र०]

संदर्भ

1. रैल्फ फाक्स, उपन्यास और लोकजीवन, अनुवाद नरोत्तम नागर, पृ० 10
2. पूर्वग्रह अंक (46-47)
3. रैल्फ फाक्स, उपन्यास और लोक जीवन, पृ० 83
4. प्रेमचन्द, साहित्य का उद्देश्य, पृ० 70
5. डॉ० त्रिभुवन सिंह, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ० 1

समीक्षा

कविता के दो छोर

□ **सतीश धर**

मौजूदा माहौल में चालू नुस्खों से बचाकर कविता लिखना जोखिम भरा कार्य है। इसी के चलते बेहतरीन कविताएं व्यावसायिक और जल्दबाज़ी के दबाव स्वरूप कविताओं के जंगल में खो जाती हैं। परिणामतः अच्छी कविताएं गम्भीर चर्चा का विषय नहीं बन पातीं।

जो कविता पाठकों को यथार्थ के निकट न ले जाकर हर यथार्थपरक वस्तु को धुंधलकी दिखाने का प्रयास करे वह कविता हलक से उतरती नहीं। यदि यह मानकर **'उठी हुई बाहों का समुद्र'** की कविताएं पढ़ी जाएं तो मानना पड़ेगा ये कविताएं ऐसी व्यवस्था के प्रति आवाज़ हैं जहां अनैतिकता और भ्रष्टाचार समाज में पग-पग पर व्याप्त हैं। ऐसी स्थिति में कविता के माध्यम से त्रासदी विहीन समाज के विषय में सोचना एक 'आदर्श' है। 'उठी हुई बाहों का समुद्र' का कवि भीतर-बाहर से पूर्ण 'आक्रोश' से भरा पड़ा है। आक्रोश, कविता-यात्रा को ऐसे पड़ावों पर लाकर रोक देता है जहां केवल इस आक्रोश की अभिव्यक्ति ही मुखर हो जाती है, बहुत-सी अन्य बातें 'गौण' होकर रह जाती हैं। मसलन ये कविताएं 'पीढ़ी दर पीढ़ी चलते अन्धेरे की परम्परा को चीर डालना चाहती हैं' और कविता केवल तभी लिखी जाती है 'जब भीतर की तेज़ आग को क़लम की नोक़ से कागज़ पर उतरना होता है (पृ० 357)। इस प्रक्रिया में आक्रोशजन्य शब्दों और परिस्थितियों के प्रति कवि का मोह गहराता जाता है जिसकी परिणति रह-रह कर उन्हीं शब्दों से होती है। उदाहरण के लिए 'बारूद' शब्द को कविताओं में बार-बार देखा जा सकता है। यह आक्रोश कवि की एकमुखी चिंता है, जिसके परिणामतः कविताओं में 'दोगले प्रेत,' 'चुपचाप गुमसुम निकल जाते लोग,' 'तरह-तरह के छोटे और बड़े जादूगर,' 'गुनाह और जादूगरी के दोमुहें जिन्न,' 'प्रेतों की सत्ता' अधिक मुखर हुए हैं। उस पर कवि आशावान है—मेरे बाद मेरी कविताएं/प्रशस्त करेंगी अग्निपथ और मेरे बाद मेरी कविताएं युद्ध करेंगी। वस्तुतः भीतर का प्रबल आक्रोश संवेदना की इस स्थिति तक कवि को पहुंचा ही देता है। कवि **सुल्तान अहमद** इस स्थिति से बच नहीं पाए हैं। लेकिन संवेदना का यह स्तर समाज को आशावान होने की प्रेरणा भी दे यह कवि की उपलब्धि है। 'मायादर्पण जब मजबूत हो' कविता की पक्तियां हैं : 'मस्तक अगर उठे रहेंगे/सीने अगर तने रहेंगे/तो आंखों से/लपलपाकर निकलेंगी/ विद्युत की तेज लपटें/जो माया दर्पण को सहज ही निगल जायेंगी।' माया दर्पण इतने कमजोर नहीं कि बालोचित झुंझलाहट में फेंके गए किसी पत्थर से झनझनाकर टूट जाएं। कवि की यह पैनी निगाह भविष्य के खतरों के प्रति बराबर सचेत करती रही है।

कवि जानता है शोषण के इस दौर में छोटी-छोटी-असन्तुष्ट इच्छाओं की पूर्ति के कारण

साथियों के साथ रहकर भी उभर नहीं पाती आंखों में पहचान। यही वजह है 'उठी हुई बाहों का समुद्र' की कविताएं 'जो सीने का लहू चूस कर ही कागज पर उतरती हैं', 'सुविधा वृक्ष की दीर्घ डालियों पर भरी दुपहरी औंधे लटके चमगादड़ों के लिए नहीं लिखीं गई हैं।

कवि अपने व्यक्तव्यों को सपाट और सुघड़ शैली में संग्रह की छोटी कविताओं में शालीनता से उभार पाया है। जिस कारण यह कविताएं अन्य कविताओं की भांति अधिक प्रभाव पाठकों पर छोड़ती है। कवि की 'सम्पूर्ण दृष्टि' संग्रह की छोटी कविताओं को सार्थक बनाती हैं।

'उठी हुई बाहों का समुद्र' की कविताएं अगर जन-आक्रोश की कविताएं हैं तो 'संवाद खत्म होने तक' की कविताएं ऐसे सत्य को अभिव्यक्त करती हैं जो सामूहिक चेतना का हिस्सा है, जिसकी सत्ता व्यापक है और कैनवास विस्तृत। यद्यपि दोनों ही संग्रहों की कविताएं 'सार्थक आक्रोश' को व्यक्त करती हैं लेकिन 'संवाद खत्म होने तक' के कवि का आक्रोश व्यवस्था की मोनोटोनी के खिलाफ़ है।

प्रह्लाद तिवारी अपनी कविताओं के माध्यम से संवेदना के क्रायसिस के प्रति चिंतित हैं। उनके विचार से यह क्रायसिस समूची मानव जाति पर आसन्न है। परिणामतः कविता के माध्यम से 'संवाद' स्थापित करने की परिणति '**संवाद खत्म होने तक**' की कविताएं हैं। तिवारी ने सभी कविताएं 'गद्यात्मक ढांचे' में लिखी है। इस प्रकार की कविताओं की एक समस्या यह रही है कि वह कभी तीव्र सम्वेदन क्षमता से विहीन हो जाती हैं। ऐसी कविताएं समाज के भयावह यथार्थ का, जो कवि को विचलित करता है, चित्रण करती तो हैं लेकिन वे पाठक को विचलित नहीं कर पातीं। ऐसी ही एक कविता है 'यह भी ज़रूरी हैं' जिसकी पक्तियां हैं: 'देर तक नदी के किनारों पर बैठकर देखता रहा हूं/कभी अपने बारे में, कभी अजायबघर के बारे में/जिस पर बदबूदार झाड़ियां उग आई हैं···बलात्कार या हत्या के समाचारों की तरह/टूटे पुल पर रुक जाता हूं—निर्माण के दौर में सिहरन से कांप जाता हूं। वैसे ही जैसे मुर्दाघरों के बीच चीखें···' स्थितियों का आत्मविश्लेषण कवि की विवशता रही है। परिणामतः 'आदमी और जंगल के बीच पनपते रिश्तों के बारे में कुछ कहने से कवि सकुचाता है। जैसा कि तिवारी ने स्वीकार किया है, जहां सहमति का बिन्दु नहीं हो सका, वहां संवाद को बौद्धिकता के स्तर पर ला कविता की सीमा-रेखा में सम्मिलित किया है। यह बौद्धिकता कविताओं को चाहे 'चमत्कार' प्रदान करती है। तिवारी की कविताओं में आसपास की नई दुनिया के वृहत्तर आयामों से जीवन्तता आई है। 'पेड़' कविता दृश्य खंडों के माध्यम के मानवीय सरोकार की ओर संकेत करती है: 'पेड़ जब आदमी का स्थान लेते हैं / भयावह दिखाई देते हैं / आदमी जब भयावह होने की कोशिश करता है / पेड़ की तरह अपने बढ़ते कद के बारे में आशंकित होने लगता है / अकेलापन लाद देता है / मौन हो ज़ाता है / यह मृत्यु का पर्याय तो नहीं।'

तिवारी ने कविताओं के माध्यम से अपना 'विजन' बना रखा है, ऐसा विजन जिसमें सबसे बड़ा उस जीवन का है जो उसके चारों ओर मौजूद है। वह ज़िन्दगी से सीधी कविताएं उठाकर पाठकों/श्रोताओं तक पहुंचाना चाहता है। केवल पात्रों के माध्यम से ही नहीं बल्कि पूरे मुहावरे के द्वारा। संग्रह के नाम की कविता 'संवाद खत्म होने तक' की पक्तियां हैं: 'दोस्तों को याद नहीं घटना जब जलकुम्भी की पकड़ शरीर के अतिरिक्त भाग पर थी/और मैं चीखता

हुआ चौराहे पर था/समय इन्तजार नहीं करता पुल पर वापसी का रात गुज़ारने के लिए/यह भी क्या संवाद है जिसमें ज़मीन के गीलेपन की गैर जरूरी कैफियत हो अनन्त कथा यात्राओं की तरह (पृष्ठ 55)।'

संवाद की सुखद स्थिति के अनुरूप तिवारी की कविता यात्रा 'संवाद खत्म होने तक' सफलता पूर्वक सम्पन्न होती है।

पुस्तकें :

1. **डरी हुई बाहों का समुद्र; सुल्तान अहमद,**
2. **संवाद खत्म होने तक; प्रह्लाद तिवारी,**

दोनों काव्य संग्रह विद्यार्थी प्रकाशन के 71, कृष्णनगर, दिल्ली-51 से प्रकाशित। प्रत्येक का मूल्य : तीस रुपये।

गुलिस्ताने साथी की एक यादगार शाम

□ प्रभात कुमार

उस दिन नाहन में यशपाल सृजन पीठ के तत्त्वावधान में, हि० प्र० भाषा एवं संस्कृति विभाग के एक साहित्यिक आयोजन के उपलक्ष्य में ख्याति प्राप्त साहित्यकार श्री निर्मल वर्मा तशरीफ लाए थे। कवि-कलाकार अवधेश कुमार, विपाशा के संपादक तुलसी रमण, भाषा संस्कृति विभाग के उपनिदेशक सुदर्शन वशिष्ठ, कवि सतीश धर, मंडी से केशवचंद्र ये लोग निर्मल जी के साथ मेरे आग्रह पर 'गुलिस्तान-ए-साथी' में संयोजित 'भारत का पहला रविवारी डिफ्टवुड संग्रहालय' देखने आये। माहनामा 'अक्स' के संस्थापक संपादक मेरे पिताश्री साथी जी से सब लोगों का परिचय करवाया गया। संग्रहालय देखने के बाद ज्यों-ज्यों शाम ढलती गई बैठक बराबर आत्मीय होती गई। इस यादगार शाम को हिन्दी के प्रख्यात लेखक श्री निर्मल वर्मा और हिमाचल के अप्रख्यात शायर साथी जी के बीच धीरे-धीरे संवाद जमने लगा। दरअसल साथी जी सृजन पीठ के रचना पाठ व चर्चा पर आधारित आयोजन में अपनी ख़राब तबीअत की वजह से जा नहीं पाये। अवधेश जी ने यहीं से बात शुरू की; "आप आते तो वहां शायद और तरह का माहौल होता?" इस बीच निर्मल जी ने सहज विनम्रता से कहा, "यह तो बहुत अच्छा हुआ कि संग्रहालय के बहाने आपसे भी मिलना हो गया।" साथी जी ने यह शेर सुनाकर महफिल का आगाज़ किया—

'दिल को तन्हाई में भी कब चैन है
शहर की हलचल में खोने दो मुझे
जिसका पाबंद-ए-वफा हूं दोस्तो
उस पर ही कुर्बान होने दो मुझे'

अब तक दाद देने वाला माहौल भी बन चुका था, कि फिर शेर—

मैं अजल से जागने वालों में था
मौत के पहलू में सोने दो मुझे

साथी जी इस बीच निर्मल जी से कह उठे कि उर्दू में हिन्दी की अपनी ब्यूटी है। फिर इस शेर को कई बार सुना गया—

अश्क ए ग़म बहने दो एक बार
हसरतों के दाग़ धोने दो मुझे

साथी जी ने आगे सुनाने से पहले कहा, "मैं वेसीकली उर्दू में लिखता हूं आप मेरी लैंग्वेज देखिये—

लोग बहुत कुछ समझाते हैं
हम चुपचाप सुने जाते हैं
शाम सवेरे इन आंखों में
ग़म के साये लहराते हैं
वक़्त पुराना जादूगर है
इसका जादू चल जाता है ।'

निर्मल जी को भाषा की सादगी पसंद आई। अवधेश जी को इसमें हिन्दी-उर्दू का फर्क नहीं लगा। साथी जी ने बताया, "मेरी वो भाषा नहीं है जो लखनऊ की है, उर्दू वालों की है। मैंने बहुत जद्दोजहद की है।" अवधेश जी ने बात को आगे बढ़ाते हुए कहा, "दो चीजें मुझे नायाब दीखती हैं उर्दू कविता में; वैसे ऐसा जापानी कविता में भी है'''एक तो उर्दू में आमद का शेर होता है और एक जुबां का शेर। जुबां से मेरी मुराद भाषा शैली से है। आमद का शेर वह होता है जो शेर अपने आप ही लिखा जाता है यानी क्रियेशन से। जुबां का शेर होता है उस्तादों के निर्देश के तहत लिखा हुआ। उसमें बदलाव हो सकता है सलाह ली जाती है। जुबां की सारी की सारी खूबियां उसमें समा जाती हैं।" अवधेश जी ने उदाहरण स्वरूप जुबां का एक शेर पेश किया—

खूबसूरत लड़कियों के हाथ पीले हो गये
खूबसीरत लड़कियां सब हाथ मलती रह गईं

उनका मानना था कि हिन्दी में आलंकारिक वर्गीकरण कविता को मूल चेतना से दूर ले गए। हमने भाषा की शक्तियों को पहचाना ही नहीं। उर्दू वालों ने शास्त्रीयता कायम रखी। उर्दू में भी नये प्रयोग किये गये। भाषा को आसान बनाया गया। परंतु उर्दू में रसास्वादन की परंपरा ज़्यादा रही और आलोचना की नहीं। हिन्दी में भी रसास्वादन की परंरारा ज़्यादा थी पर आलोचना की परंपरा भी सघन होती गई।

निर्मल जी ने अपना विचार ज़ाहिर किया, "ये जो बात आप कह रहे हैं, उर्दू, हिन्दी में, क्या हर पोयट्री में नहीं होता, चाहे इंगलिश हो, हिन्दी हो? कि कहीं हमें लगता है कि अभी तक पोयट्री में रीतिकालीन की तरह बिंब, रूपक, भाषा, प्रतीक को लेकर एक भाव प्रकट किया जाता है और ये जो बात, शेर आपने सुनाया, मुझे नहीं लगता कि लैंग्वेज़ का कोई चमत्कार है।" अवधेश जी ने फिर अपनी बात को बल दिया कि "उर्दू में एक परंपरा है जो कि अलग पहचान में आती है।" वे अपनी बात के दो कंसेप्ट, 'आमद और जुबां के शेर' की बात कर रहे थे कि ये शेष शेरों व नज़्मों से अलग नज़र आता है, पहचाना जाता है। इस पर निर्मल जी ने कहा कि हिन्दी में रीतिकालीन या भक्तिकालीन पोयट्री को पढ़ेंगे तो यही बात मिलेगी।

अवधेश जी ने इसके बाद उर्दू शायरी की ग्राह्यता को लेकर कहा कि "उर्दू शायरी तो घरों में कही सुनी जाती है, प्रचलित है। घर के सभी छोटे-बड़े इसमें शिकरत करते हैं। एक भाई जानता है कि उसकी बहन की कापी में किस तरह के शेर हैं। ये परंपरा हिन्दी में कभी नहीं रही।"

निर्मल जी ने अपनी बात जोड़ी, "हिन्दी की बात छोड़िए बंगाल में हर लड़की की कापी में रवींद्रनाथ ठाकुर के गीत लिखे रहते हैं। इसे आप कैसे एक्सप्लेन करेंगे, या रशिया में पुश्किन की पोयट्री शायद ही किसी सेंसटिव लड़की को याद न हो।"

अवधेश कुमार फिर बोले, "छंद जल्दी लोगों तक, जनसामान्य तक पहुंचता है, चाहे वो विकृत या पैरोडी ही क्यूं न हो ?"

निर्मल जी ने भी कहा, "जो पोयट्री नहीं पहुंच पाती है वो कम स्तर पोयट्री नहीं होती। अंग्रेज़ों का मध्यवर्गीय परिवार टी० एस० इलियट की पोयट्री को उस तरह से नहीं लेता जैसे कि गालिब की पोयट्री को एक संभ्रांत परिवार, मुस्लिम परिवार या भारतीय परिवार लेता है। हां, एक धारा की बात अलग है और वो धारा सच्ची बात है। पोयट्री ऊपर से नीचे बहेगी। पोयट्री, जिसकी आप बात कर रहे हैं वो लैटिन अमेरिका में नेरुदा व बंगाली में रवींद्रनाथ टैगोर की है। उर्दू में ऐसी कोई खास विशेषता है, मुझे तो ऐसा नहीं लगता।"

अवधेश जी ने उर्दू शायरी के आमद और जुबां के शेर को अलग पहचाने जाने की बात फिर की, "जिस तरह से 'राम की शक्ति पूजा' को निराला छंदबद्ध तरीके से लिख सकते थे उस तरीके से 'जूही की कली' नहीं लिखी जा सकती और जिस तरीके से 'जूही की कली' लिखी गई उस तरीके से 'गुलाब' नहीं लिख सकते थे। ये जानकारियां एक सीमित लेखक-पाठक वर्ग तक ही हैं। उनका छंदबद्ध संस्करण बन जाता तो हमारे बच्चों तक पहुंच जाता। जिस तरह से शेरे-ओ-शायरी के घटिया से घटिया जुमले भी हमारे बच्चों को याद रहते हैं।"

साथी जी ने कहा, "ग़ज़ल के जिस शेर को पसंद किया जाता है वो जल्दी याद हो जाता है। लंबी कविताएं याद नहीं रहतीं। मीरा के भजन, कबीर आदि के दोहे याद हो जाते हैं। जानदार चीज़ कहीं भी हो याद रह जाएगी।"

सतीशधर : अवधेश जी का मतलब था कि जो तमीज़ और तहज़ीब उर्दू में है वो हिन्दी में नहीं है।

साथी जी : उर्दू भाषा बादशाहों व नवाबों की महफिलों से होकर गुज़री भाई है।

निर्मल जी : तुलसीदास के दोहे कितने लोगों ही को याद हैं ?

सतीश धर : जिन्होंने पढ़े हैं, उन्हें याद हैं।

निर्मल जी : क्या ये सुंदर बात नहीं है कि आप कुछ कविताओं का आनंद उठाने के लिए लाइब्रेरी जाते हैं और किताबें पढ़ते हैं, वहां उनकी स्मृति ले जाती है ?

तुलसी रमण : कई बार शीर्षक या पंक्तियां याद नहीं रहतीं पर भाव याद रहता है। कुछ कवि समझ न आने के लिए भी याद रह जाते हैं। संभवत: यह भी एक उपलब्धि है।

निर्मल जी : चाहे पोयट्री उर्दू की हो या हिन्दी की जो अच्छी पोयट्री होती है स्मृति में रहती है। शब्द याद रहें या न भी रहें, शब्दों को तो जाकर किताब में पढ़ सकते हैं। भाव की ही स्मृति रहती है।

अवधेश कुमार : प्रेमचंद, मंटो के अफसानों को दोबारा पढ़ने की ज़रूरत महसूस नहीं होती।

तुलसी रमण : यह संवेदना की निष्पत्ति वाली बात है। किसी रचना को कोई ग्रहण कैसे कर जाता है, उसके तत्त्व कहीं अपने अंदर होते हैं पहले ही; और जब वही बात आती है तो उसके अंदर प्रभाव और पक्का होता है। क्योंकि यहां लेखक की बात ही, अपनी बात होती है। दोनों में एकात्म भाव हो जाता है। इसी से संभवत: स्मृति गाढ़ी होती है। मुक्तिबोध की कविता भले ही याद न रहे, लेकिन मुक्तिबोध का एक समग्र प्रभाव रहता है।

इस बीच साथी जी और निर्मल जी को क्रमश: दो पुरानी फिल्मों 'रतन' और 'बरसात'

के कुछ जीवंत, मर्मस्पर्शी दृश्यों का स्मरण हो आया। कुछ बातें हुई।···

सतीश धर ने साथी जी को छेड़ा कि वे निर्मल जी द्वारा पूछे सवाल का जवाब दें कि अकेलेपन की स्थिति में आप कैसा महसूस करते हैं? साथी जी ने अतीत में झांककर कहा, "अलहदगी का शदीद अहसास ही काफी है मुझे। अकेलेपन का मज़ा नहीं। क्या हुआ, कभी एक पैग लगा लिया। बातचीत से ज़िंदगी मिलती है। दोस्तों की महफिल बहुत ज़रूरी है।"

सतीश धर का इशारा था कि साथी जी इस विषय पर कोई शेर सुनाएं। माहौल से कट जाने के बारे एक किता पेश हुआ—

जिसमें कही गई हो दिल के दुखों की बात
पढ़ने को कोई ऐसी मिसाल किताब रख
साथी वो बज़्म-ए-बादा गुसांरा जो छूट गई
खिड़की में इक गिलास सिरहाने शराब रख

इस पर मुकर्रर हुआ···और उसके बाद और शेर—

गम को इस दौर में खुशी कहिए
और मरने को ज़िंदगी कहिए
नाम बदला गया अंधेरे का
अब अंधेरे को रोशनी कहिए

जब कोई बात लब पे आती है उस घड़ी आह-ए-सर्द भरता हूं
आह ये शाम, ये अकेलापन खुद ही कहता हूं खुद ही सुनता हूं

माहौल में कुछ देर खामोशी रही तो अवधेश जी ने बात बढ़ाने की कोशिश कुछ यों की, "आप मुझे ये बताओ कि आप बाप-बेटे में इतना अच्छा तालमेल कैसे है?" उनका मतलब हम दोनों के खुले, दोस्ताना रिश्ते से था। केशवचंद्र ने पूछा, "आपका क्या ख्याल है कि इस दौर में बाप-बेटा इस स्तर पर जी नहीं सकते?"

साथी जी ने कहा "मेरी ज़िन्दगी में ये कोशिश रही है कि मेरा जो कोई अजीज है या कोई मेरे से बड़ा है, वो बतौर दोस्त मेरी ज़िन्दगी में रहे, बतौर रिश्तेदार कम रहे। क्योंकि दोस्त के नाते हम आदमी को ज्यादा समझ सकते हैं।"

निर्मलजी : "अपने रिश्तेदार को भी दोस्त में बदलना चाहिये।

बात नरेश कुमार शाद व उनके पिता नौहरिया राम दर्द के सम्बन्धों तक पहुंची। नरेश कुमार शाद का निर्मल वर्मा और नरेश चन्द्र साथी, दोनों से ही अच्छा परिचय रहा है, यह बात भी खुलकर सामने आई। इस पर साथी जी ने शाद का एक शेर सुनाया—

इक तरफ रास्ता है दफ्तर का
इक तरफ मैकदे का जादा है
आ गया हूं अजब दो-राहे पर
ऐ गमए जीस्त क्या इरादा है

निर्मलाजी ने शाद साहब के संदर्भ में अपनी यादें ताज़ा कीं, "और मैं अगर किसी के बिल्कुल नज़दीक आया हूं तो वो शाद है। हमारे कलचरल फोरम में वो आया करते थे। मुझे कभी भी महसूस नहीं हुआ कि वो इतने बड़े शायर भी होंगे। बिल्कुल डूबे हुए। शराब में डूबे हुए। तब मैंने लिखना शुरू किया था। मैं तो कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था, ये पचास की

बात है, उनको तो मरा हुआ पाया गया था, जमुना के किनारे। जब वे सुनाया करते थे तो हम सबकी रूहें कांप जाती थीं। मैंने उन्हें अपनी एक कहानी सुनाई थी तो उनकी आखों में आंसू आ गये थे। मुझे अभी तक वो शाम याद है।" निर्मलजी ने उत्सुकता से पूछा, "शाद की कुछ किताबें आईं हैं ?" साथीजी ने बताया कि उनकी 20-22 किताबें हैं। सतीश धर ने शाद का कोई और शेर सुनने की इच्छा की तो साथीजी ने सुनाया—

यही सीखा है मैंने जिन्दगी से
के बेखबरी है अच्छी आगाही से

क्षणभर की चुप्पी के बाद निर्मलजी ने पूछा, "फ़ैज़ का कौन-सा शेर आपको अच्छा लगता है ?"

साथीजी ने सुनाया—

मवाम फ़ैज़ कोई राह में जंचा ही नहीं
जो कूवे यार से निकले तो सूवेदार चले

सतीश धर : साथी जी, उर्दू शायरी, नज़्म, ग़ज़ल, हिमाचल में कैसा समां बांधे हैं ?
तुलसी रमण (छेड़ते हुए) : यह आप पब्लिक रिलेशनज़ के तहत पूछ रहे हैं, धर साहब ?

साथी जी : उर्दू में नये लिखने वाले पैदा नहीं हो रहे हैं। कुछ लोग एक्टिव हैं, ज़्यादा नहीं। पुराने लिखने वालों से ज़बान-ओ-अदब ज़िन्दा नहीं रहते। मेरा अपना तर्जुबा है···मेरा तो उस्ताद भी कोई नहीं है। अपनी कोशिश है मेरी। आज के नौजवान पढ़ना नहीं चाहते। हमें पढ़ने की ललक थी। नये लेखक जो हिन्दी, उर्दू में आ रहे हैं उनकी नॉलिज अक्सर कुछ नहीं होती। स्तर इतना गिरता जा रहा है कि बस, नाम के आगे डा० लिखा होता है और भाषा का प्रयोग ऐसा कि···"

अवधेश जी ने बात को नयी दिशा दी, "उर्दू काव्य में जैसे छन्द हैं, बहरें बनी हैं, फैक्टर्ज़ हैं, कोई भी बात अपनी शक्ल खुद आख़्तियार करती है। अगर छोटे बहर में रूप अख़्तियार कर सकती है तो उसमें आयेगी। पेश करते वक्त सब तय हो जाता है कि ये छोटी बहर में जायेगी या बड़ी बहर में।"

साथी जी : असर का जहां तक ताल्लुक है, वो शायरी में ये सोचकर नहीं चल सकते कि कौन-सी बहर में मुझे ये बाद कहनी चाहिये कि असर डाले। मगर ये देखना पड़ता है, ख़ास तौर से ग़ज़ल की शायरी में, कि जो मैं बात कहना चाह रहा हूं उसके लिए कौन सी बहर ज़्यादा स्यूटेबल है। सबसे बड़ी तकनीकी दिक़्क़त जो ग़ज़ल व गीत की शायरी में है, वो ये कि हमको उसके लिए हम-काफ़िया लफ़्ज़ चाहिये। हम-काफ़िया लफ़्ज़ों का काफ़ी ज़खीरा होना चाहिए। फिर ये देखना होगा कि कौन-सी बहर में आपको ज़्यादा कमाण्ड है। छोटी बहर में कम लफ़्ज़ों में बात कहनी पड़ती है। लम्बी बहर में ज़्यादा लफ़्ज़ चाहिए। दोनों बहरों की अपनी-अपनी दिक्कतें हैं। बहर तो ग्रामर की तरह हैं। एक कायदा है उससे बाहर नहीं जा सकते। उर्दू में नज़्मों का भी एक अच्छा ख़ासा तकनीकी मामला है। मगर जब से आज़ाद नज़्म आई है सब तोड़ दिया—ढीला पढ़ गया।

अवधेश कुमार : एक चीज़ मैं बड़ी शिद्दत से पूछ रहा हूं, आप मूल रूप से पंजावी भाषी हैं, उर्दू भाषी हैं···या उत्तर प्रदेश के हिन्दी भाषी हैं ?

साथी जी : पंजाब से हमारा लिंक रहा है, मगर हम पंजावी भाषी नहीं हैं।···

अवधेश कुमार : आपकी भाषा ?

साथी जी : हमारी भाषा तो हिन्दुस्तानी है, उर्दू भी मेरी लैंग्वेज नहीं है।

अवधेश कुमार : मूल रूप से जो बहरे हैं, रिद्म जो हैं, वो मुसलमानों की देन है।

साथी जी : इसमें काफी कुछ ईरान से आया है, परशियन से आया हैं ।

अवधेश कुमार : जिस बहर में आप कोई ग़ज़ल, शेर सुनाते हैं मीटर उसका वही रहता है, वज़न वही रहता है, लेकिन जो लखनऊ का बाशिन्दा शायर जब उसे सुनाता है तो वो कोई और चीज़ होती है, दिल्ली का शायर सुनाता है तो और चीज़ होती है।

साथी जी : वो फर्क यूं है कि उनकी ज़बान एक ख़ास किस्म की ज़बान है। उनकी टकसाली ज़बान है, मेरी ज़बान को देखें तो मैंने कोशिश की है कि ज़बान हिन्दुस्तानी हो जाये, हिन्दी के करीब जाये, हिन्दी बन जाये । मेरी ज़बान लफ्ज़ों के शायरों की ज़बान नहीं।

निर्मल जी : किसी ख़ास किस्म की ज़बान पर बंदिश नहीं होनी चाहिए ।

शाम गहरा चुकी थी। वक्त भाग रहा था। सतीश धर ने निर्मल जी से एकमुश्त पूछ डाला, "निर्मल जी, आपको यहां कैसा लगा ?"

निर्मल जी : मैं सोचता हूं इस शाम हम लगों ने बहुत बातचीत की, इतनी अच्छी शाम यहां गुज़ारी, मैं साथी जी के साथ सारी रात बैठ सकता हूं।

सतीश धर : निर्मल जी, ये तो आप अपनी ग्रेटनेस बता रहे हैं।

निर्मल जी : ये मेरी ग्रेटनेस नहीं, ये मेरी सिनसेयरिटी है, क्योंकि अगर आज मैं संयोगवश ये कलेक्शन देखने नहीं आता तो साथी जी से मुलाकात नहीं होती।

अब मुलाकात सिमट रही थी। खुशनुमा माहौल में सब रच बस गये थे। जाते-जाते साथी जी ने कहा : "यार जिन्दा सोहबत बाकी" । वे सबका शुक्रिया अदा कर रहे थे और उनके होठों पर था मीर का ये शेर—

अब तो जाते हैं मैकदे से मीर
फिर मिलेंगे जो ख्याल आया

[गुलिस्तान ए साथी, नाहन-173001]

कुल्लू क्षेत्र की लोक नाट्य परम्परा

□ मौलराम ठाकुर

राखस खेल

अधिक अश्लीलता के कारण ही इन्हें प्राय: राखस-खेल (राक्षस-खेल) के नाम से भी जाना जाता है। इन अश्लील नाट्यों के पीछे एक जबरदस्त भावना काम करती है। लोगों का विश्वास है कि इस क्षेत्र में मानव-समाज के पनपने से पहले यहां भूत, प्रेत, राक्षस, पिशाच, दूत, दानवों का राज्य था। उन्हें नष्ट करने और मानव समाज स्थापित करने के लिए यहां के देवताओं को बड़ा संघर्ष करना पड़ा। अन्तत: जब राक्षसों का सर्वनाश हुआ तो उनके क्रूर और कठोर अत्याचारों की याद में इन अश्लील नाट्यों की प्रथा चल पड़ी। कई ऐसे भी दूत-भूत-राक्षस थे जिन्होंने वर्ष में कम-से-कम एक बार यहां आने की आज्ञा प्राप्त कर ली थी। उन्हें भगाने के लिए भी नाट्य करने पड़ते हैं। पहाड़ी लोगों की यह विचारधारा शिष्ट समाज की विचारधारा से भिन्न नहीं है। भविष्यपुराण में लिखा है कि पृथु नामक न्याय-प्रिय तथा प्रजापालक राजा के समय में भी ढुण्ढा नामक राक्षसी ने शिशुओं पर कष्ट ढा दिया था और उन्हें एक-एक करके खाना आरम्भ किया था। तब ऋषि वसिष्ठ द्वारा सुझाए उपाय के अनुसार फागुन पूर्णिमा को सभी लड़कों ने लकड़ी, कंडा-झाड़-झंखाड़, घास-पात बटोरकर आग जला दी तथा गाली-गलोच और अश्लील व्यवहार करते हुए उसकी परिक्रमा की। तभी ढुण्ढा राक्षसी वहां से भाग गई। कुल्लूई समाज में पौष और माघ के महीने 'काला महीना' के नाम से जाने जाते हैं। इन दिनों देवता स्वर्ग चले जाते हैं और तभी 'राखस खेलें' खेली जाती हैं।

गिहणा

पन्द्रह पौष की रात को सभी लोग विशेष भोजन बना कर दो बार खाते हैं—एक बार बियाली (रात का भोजन) और दूसरी बार दनाली (दूसरी बियाली)। तब प्रत्येक घर के केवल पुरुष-बच्चे, बूढ़े, जवान, कायल वृक्ष की लकड़ी की मशालें लेकर घर से बाहर निकलते हैं और गांव के सांझे स्थान में एकत्रित होते हैं। सांझे स्थान से सभी पुरुष ढोल, नगारे के साथ हाथ में मशालें लिए हुए गांव की परिक्रमा करते हैं। परिक्रमा करते हुए विशेष अश्लील गाने और गालियां दी जाती हैं। यह मूल रूप से राक्षसों को गालियां होती हैं ताकि वे गांव छोड़कर भाग जाएं।

गांव के एक छोर की सीमा पर पहुंच कर सभी खड़े हो जाते हैं। ढोल-नगारे थोड़ी देर के लिए बंद किए जाते हैं। तब मारने वाले गांव वालों को विशेष अश्लील गालियां निकाली

जाती हैं। प्रायः एक ही समय आमने-सामने दो गांव वाले एक दूसरे को वाद-प्रतिवाद में गालियां दे रहे होते हैं। गांव के मुख्य दो बूढ़े दूसरे गांव के प्रत्येक घर के स्वामी का नाम लेते हैं, उसे कोई अश्लील, लज्जाजनक कार्य करते हुए बताते हैं और शेष सभी लोग उनके अनुक्रम में वही शब्द दोहराते हैं और 'हो-हो' या 'फुलड़ा' कहते हैं। फुलड़ा शब्द कहते ही ढोल-नगारे पर ज़ोर-ज़ोर से चोट की जाती है। ऐसी गालियों में दूसरे गांव का किसी भी घर का स्वामी छूट नहीं जाना जाहिए। यदि कोई नाम बिना गाली दिए रह गया तो दोनों मुख्य बूढ़ों को 'कुत्त-खाज़ी' (चरम रोग) की बीमारी लग जाती है। दोनों गांव वाले प्रत्युत्तर में बढ़िया से बढ़िया गाली देने का प्रयत्न करते हैं। कितनी अच्छी गाली दे पाते हैं ये दोनों मुख्य में दोनों बूढ़ों की योग्यता रहती है।

दूसरे गांव के प्रत्येक स्वामी को सामान्य अश्लील गालियों के अतिरिक्त उसकी परि-स्थितियों के समाधान के संवाद भी कहे जाते हैं। उदाहरणार्थ, यदि कोई अविवाहित हो तो कहा जाता है कि "फलां के लिए शादी का प्रवन्ध किया जा रहा है।" यदि विवाहित होने पर बच्चे न हो रहे हों तो कहा जाता है "उसके लिए वच्चे जमाने का प्रवन्ध किया जा रहा है।" किसी के अधिक वच्चे हों तो कहा जाता है कि "भगतू के वच्चों के लिए भोजन-वस्त्रों का प्रवन्ध किया जा रहा है।" पति-पत्नी के सम्वन्ध अच्छे न हों तो दोनों के वीच सुलह-सफाई की वात कही जाती है। इसे 'गिहणी' या 'फुलड़ा मारना' कहते हैं। जव दूसरे गांव के सभी घरों के मालिकों को गालियां देना समाप्त हो जाता है तो सभी मुट्ठी भर धूल लेकर उस गांव की ओर फैंक देते हैं और सभी एक स्वर में उस गांव के लिए वड़ी-सी अन्तिम अश्लील गाली देते हुए पुनः बाजे-गाजे के साथ गांव के सांझे स्थान पर पहुंचते हैं। वहां पहले से ही पड़े लकड़ी के वड़े-बड़े ठेलों और गांठों के बीच सभी मशालों को डाल कर एक बड़ा 'घियाना' (अलाव) जलाया जाता है। उसकी विधिवत् पक्रिमा की जाती है, मंगलाचरण गाया जाता है। और सारी रात रंग-रलियां मनाते हैं। यह घियाना माघ मास की अन्तिम तिथि तक बुझना नहीं चाहिए 'गिहना' का यह क्रम माघ की पूर्व सन्ध्या तक चलता रहता है।

झिहरू

माघी की पूर्व-संध्या पर लोहड़ी के दिन पुनः हर घर में विशेष भोजन बनता है जिसमें 'बड़े' (भल्ले) जरूर बनते हैं। रात को खाना खाने के बाद पुनः पन्द्रह पौष की 'गिहणा' की परम्परा और अधिक ज़ोर-शोर और ठाठ-बाठ के साथ निभाई जाती है। यह गिहणा की अन्तिम रात होती है। गांव की परिक्रमा और दूसरे गांव को गिहणे के बाद जब घियाना की परिक्रमा हो जाती है तो दूसरे अश्लील नाट्य शुरू हो जाते हैं। इनमें से 'झिहरू' का पहला स्थान है। पिछले पन्द्रह दिनों की रंग-रलियों में राखस-खेल तो रोज खेले जाते थे जिसमें लोग दो दल बना कर एक दल राक्षस का अभिनय करता था और दूसरा मनुष्य का। राक्षसों को गालियां निकाली जाती हैं और राक्षस लोग अद्भुत लज्जाजनक अभिनय करते हुए कभी आग के ऊपर से छलांगें मारते हैं और कभी इधर-उधर भागते हैं। उसके बाद झिहरू खेल शुरू किया जाता है। इसका मुख्याकर्षण अश्लील संवाद और अश्लील अभिनय है। दो मुख्य बूढ़े अश्लील गाने आरम्भ करते हैं और शेष उनका अनुकरण करते हैं और साथ-साथ अभिनय करते हैं।

यदि दो मुख्य बूढ़े थक जाएं या उनकी अश्लील शब्दावली समाप्त हो जाए तो अन्य

चतुर बुजुर्ग उनका स्थान लेते हैं। उनका हर-एक पद तुकान्त होता है। शेष सभी अपने-अपने ढंग से उनकी शब्दावली और तुकबंदी के अनुसार दो बार अश्लील अभिनय करते हैं—एक बार जब मुख्य बूढ़े बोल रहे होते हैं और दूसरी बार जब वे स्वयं उन बोलों को दुहराते हैं। कुछेक केवल शब्दावली और तुकबन्दी दोहराते हैं। अभिनय नहीं करते। प्राय: अभिनय वहीं करते हैं जो अभिनय में चतुर हैं या जिसे पद के अनुसार तुरन्त अभिनय सूझ जाए। एक-एक पद को कई बार दोहराया जाता है और उसी अनुसार एक-दूसरे से छेड़खानी, अश्लील हरकतें और अभिनय जारी रखते हैं—कभी एक के ऊपर दूसरा चढ़ कर अभिनय करता है। कभी कोई लेटता है और दूसरा उस पर चढ़ कर अश्लील अभिनय करता है। कभी एक के पीछे दूसरा लग जाता है। दो मुख्य बुढ़ों की योग्यता इसमें है कि वे सुन्दर से सुन्दर अश्लील शब्दावली में तुकबन्दी करें और शेष की कुशलता इसमें है कि उनकी शब्दावली और तुकबन्दी के साथ अश्लील से अश्लील परन्तु बिलकुल मेल खाता हुआ अभिनय करें। यह सिलसिला कई घंटों तक चलता रहता है।

बांढू

झिहरू आशु कवि की तुकबन्दी है, चतुर पात्र का अभिनय है और तेज़ गति की उछल-कूद का नाट्य है। इसलिए यह अधिक देर तक जारी नहीं रखा जा सकता। तब बांढू नाट्य का आरम्भ किया जाता है। यह आराम से किया जाने वाला अभिनय है। इसके बहुत से सम्वाद और अभिनय पारम्परिक हैं जो हर वर्ष समान रूप से किए जाते हैं। इसमें तुरन्त अपनाई जाने वाली तुकबन्दी नहीं है; न ही पात्रों को तुरन्त समझने और किए जाने वाले अभिनय हैं। इसके गीत और अभिनय हैं तो अश्लील ही, परन्तु हर वर्ष समान रूप से किये जाने वाले हैं। उदाहरणार्थ एक 'अश्लील बारहमासा' है जिसकी शब्दावली बड़ी लज्जाजनक है। यह एक लम्बा गीत है जिसमें हर मास किए जाने वाले अश्लील कार्यों का बखान है। मुख्य बूढ़े उसके पद गाते हैं स्वयं अश्लील अभिनय करते हैं। शेष लोग उसे दोहराते हैं और अपने-अपने ढंग का अभिनय करते हैं। इसमें छोटे-छोटे अश्लील रूपक भी दर्शाए जाते हैं। एक-दूसरे पर कटाक्ष भी किए जाते हैं।

माघी से सात दिनों तक झिहरू और बांढू लोक-नाट्य लगातार खेले जाते हैं। सातवें दिन को 'सतदयाले' के रूप में मनाया जाता है। उसके बाद भी ये माघ के अन्त तक खेला जाता है, परन्तु उसके बाद इनका कोई प्रचलन नहीं है।

गनेड़

गनेड़ अश्लील नाट्य का एक और विशिष्ट उदाहरण है। यह कुल्लू के अनेक गावों में खेला जाता है, परन्तु नग्गर का गनेड़ सबसे अधिक प्रसिद्ध है। वैसे सभी स्थानों पर इसका स्वरूप एक-जैसा देखने में आता है। नग्गर गांव में यह पौष मास की अमावस्या के चार दिन बाद आरम्भ होता है। रात को मशालों और अश्लील नाट्यों का दौर झिहरू बांढू की तरह रहता है। गनेड़ के दिन एक व्यक्ति के सिर पर प्राचीन काल से सुरक्षित रखे भेढ़ के सींग बांध दिए जाते हैं। यह व्यक्ति 'जठियाली' कहलाता है। जठियाली को दो अन्य आदमी मूसलों पर बिठा कर कन्धों पर उठाते हैं। एक और आदमी उसके सिर पर भांग का मूठा फेरता रहता है। तब वह पहले मंगलाचरण गाता है और शेष उसे ज़ोर-ज़ोर से दोहराते हैं—

हे सू मंगल, केसू हाथ
हे सू मंगल, राजा हाथ
हे सू मंगल, रियाया हाथ
हे सू मंगल, सेवक हाथ
हे सू मंगल, धरेरी हाथ
हे सू मंगल, हिड़मा हाथ

"हे शिव-मंगल भगवान, आपके हाथ शुभ हों। राजा, जनता, सेवक, धरती और हिडिम्बा देवी सभी के हाथ शुभ हों।" इस मंगलाचरण के बाद अश्लील गानों और अभिनय का दौर चलता है। कंधों पर रखे मूसलों पर सवार जटियाली भेडे के सींग और भांग के मूठे के साथ पहले गालियां और अश्लील अभिनय करता है और शेष उसे दोहराते हैं। यह गाने झिहरू और बांढू के गानों और अभिनय से बहुत भिन्न नहीं हैं। बारह-मासा इनमें प्रमुख है।

स्वांग

कुल्लू में स्वांग का कोई समय, विषय या मंच निर्धारित नहीं। यह सामान्य मनोरंजन का साधन है और कभी भी किसी भी स्थान पर खेला जा सकता है। विवाह शादियों और मेले-त्योहरों में अनेक तरह के स्वांग देखने में आते हैं। मूल रूप में स्वांग से अभिप्राय नकल करने से है। किसी बात, किसी घटना, किसी चरित्र, किसी रिवाज़ या परंम्परा को उसी तरह या बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत करना वास्तविक स्वांग है। कुल्लूई स्वांगों की परम्परा बड़ी प्राचीन और बहुत विस्तृत रही है। अतः उन्हें किसी सीमा में बांध कर दर्शाना सम्भव नहीं। यहां उदाहरण के रूप में कुछेक स्वांगों का उल्लेख किया जाता है।

पुहाल-गद्दियों के भेड़मन्नी स्वांग

पुहाल वे लोग हैं जो पेशे से भेड़ें पालते हैं। सर्दियों में हर घर का स्वामी अपनी भेड़ें स्वयं पालता है। परन्तु जब गर्मियां आती हैं और खेती-बाड़ी का काम शुरू हो जाता है तो सभी लोग अपनी भेड़ें गांव के पुहाल के पास चराने को दे देते हैं। वह इस तरह इकट्ठी हुई सात-आठ सौ भेड़ें लेकर आबादी से बाहर पर्वत-शिखरों पर उन्हें चराने निकल जाता है और बड़ा कठिन समय गुज़ारता है। कई बार मूसलाधार बारिश में भी खुले आसमां के नीचे भेड़ों के साथ रहता है। वनों में उसे हिंसक पशुओं का स्वयं सामना करना पड़ता है। कई महीनों तक उसका समाज भेड़ें ही होती हैं या एकाध साथी। परन्तु वह होता है बड़ा खुशदिल और मज़ाकिया। जेठ महीने के आरम्भ में पुहाल भेड़ें लेकर लाहुल चले जाते हैं और भादों के अन्तिम दिन में वापिस आते हैं। आसौज के प्रथम सप्ताह किसी एक दिन भेड़ों के सभी स्वामी बढ़िया भोजन और पेय-पदार्थ लेकर अपनी-अपनी भेड़ों की ऊन काटने के लिए जंगलों में किसी जगह चले जाते हैं। दिन को ऊन काटते हैं। शाम होते-होते सभी भोजन इक्ट्ठा किया जाता है। भेड़ें भी एकत्रित की जाती हैं और सबसे पहले पुहाल कुशलपूर्वक लाहुल से वापिस आने के लिए मनौती या 'सुखणा' (प्रार्थना) की पूर्ति में 'शुक्र' के नाम से एक भेड़ा या बकरा काटता है और उसे पका कर लोगों द्वारा लाए भोजन, सुरा-सरा-लुगड़ी का खूब मज़ा उड़ाते हैं। तब स्वांग का दौर चलता है।

अनेक तरह के स्वांग निकाले जाते हैं। सबसे पहला स्वांग पुहाल द्वारा स्वयं निकाला

जाता है। वह पिछले चार महीनों के दौरान हुई विशेष घटना का ही स्वांग प्रस्तुत करता है। स्वयं पुहाल बना रहता है। अपने साथी को लाल भालू बनाता है। (जो लाहुल में प्राय: पाया जाता है और भेड़ों को उठा कर ले जाता है।) लाल भालू भेड़ों पर भुपकता है। पुहाल उसको भगाने का प्रयास करता है उसके पीछे कुत्ते लगाता है। कुत्ते उसे पहचानते हैं फिर भी भालू के रूप में होने के कारण उस पर खूब भोंकते और झपटने का प्रयत्न करते हैं। वह एक भेड़ उठाने का प्रयत्न करता है और पुहाल उससे छुड़ाता है। उनकी आपसी कशमकश बड़ी मनोरंजक होती है।

दूसरे स्वांग में भेड़ों को हुई बीमारी का दृश्य प्रस्तुत किया जाता है। सबमें से बीमार हुई लंगड़ी भेड़ों को इकट्ठा करता है। उनकी टांगों पर सचमुच पट्टी बांधता है। उन्हें पकड़ कर मुंह में पीसा हुआ नमक डालता है। बांस की बड़ी नाली से भेड़ों को दवाई पिलाने का स्वांग करता है। अधिक से अधिक भेड़ों के बच्चों को अपने चोले की गोद में डालता है। इस तरह अपनी शक्ति का प्रदर्शन भी करता है कि समय आने पर वह कितने भेड़ के बच्चों को उठा कर चलने की शक्ति रखता है। भेड़ों के स्वामी समझ जाते हैं कि उसके पास भेड़ें देना उचित है। वह उनकी रक्षा कर सकता है।

पुहालों के बाद दूसरे लोग स्वांग निकालते हैं। दो पुहालों के बीच प्रतिद्वन्द्व को लेकर स्वांग निकाला जाता है। पुहाल पति-पत्नी की कोई घटना लेकर उनका स्वांग किया जाता है। पुहालिन रूठ कर दूर बैठ जाती है और पुहाल उसे मनाने के कई ढोंग रचाता है। पत्नी भेड़ें छोड़कर अपने कपड़े-बिस्तर इकट्टा करके भागने का प्रदर्शन करती है और पति उसकी मिन्नत-चापलूसी करता है। क्योंकि वह उसके सहयोग के बिना अकेला इतनी भेड़ों को जंगलों में नहीं चरा सकता। एक अन्य स्वांग में पति-पत्नी के बीच प्रेम-सम्बन्धों को प्रस्तुत किया जाता है कि वे दोनों अकेले वनों में कैसे रहते हैं। इनमें कुछ अश्लीलता भी रहती है। भोजन और पेय-पदार्थों का ढेर तो लगा ही रहता है। उसे जबरदस्ती खिलाया-पिलाया जाता है। पिलाने का दृश्य तो आम रहता है। इसमें सभी भाग लेते हैं। जब तक शुक्र को दिए बकरे या भेड़ का मांस खाकर समाप्त नहीं होता तब तक खाने, पीने और स्वांग का दौर चलता रहता है।

चूंकि एक क्षेत्र में कई पुहाल होते हैं और प्रत्येक पुहाल के यहां यह आयोजन होता है। इसलिए आश्विन के प्रथम दिन से कार्तिक के मध्य तक यह कार्यक्रम कहीं न कहीं चला रहता है।

शौयरी स्वांग

सारे हिमाचल में प्रथम अश्विन को शौयरी, शैरी या सैरी त्यौहार के रूप में बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है। कुल्लू में प्रात: गांव के बच्चे हर घर में जाकर सभी घर वालों को 'जूब' (सं० दुर्वा, दूब) या फूल भेंट करते हैं और घर वाले उन्हें अखरोट देते हैं। दिन को स्थान-स्थान पर देवता के मेले लगते हैं और रात को विभिन्न प्रकार के स्वांग प्रदर्शित किए जाते हैं। अनेक तरह के स्वांग दिखाए जाते हैं। कुछ वर्षों पूर्व एक गांव में देखे स्वांगों की झलक यहां देना उपयुक्त होगा।

पानी का अभाव और गो-मूत्र का स्नान

पानी की समस्या तो हिमाचल के अनेक गांवों में पाई जाती है। उस गांव में भी पानी का बड़ा अभाव है और उसी का स्वांग प्रस्तुत है। गांव में एक नवविवाहित वधू के मायके से

मेहमान आया है। पानी के अभाव में लड़की को मुसीबत हो गई। घड़ों को टटोलती है। बर्तनों को एक-एक करके तलाशती है। गिलास-लोटे को पटकती है परन्तु पानी कहां है? लड़की मायके से आए मेहमान से पानी के अभाव को छिपाती है। परन्तु रिश्तेदार स्वयं भेद खोलता है और कहता है 'इस गांव में पानी ढूंढ़ने से बेहतर है चिड़िया का दूध ढूंढ़ा जाए। चिड़िया का दूध मिल सकता है पर तु पानी नहीं मिल सकता।' जैसे-तैसे वधू पास-पड़ौस से पानी उधार लेकर भोजन बनाती है और खिलाती है। परन्तु अंत में जब मेहमान ने पूजा से पहले नहाना ज़रूरी बताया तो उसे गौंच अर्थात् गौ-मूत्र से नहलाती है।

गांव की दाई (नर्स)

गांव में हस्पताल नहीं है, न कोई डिस्पैंसरी है। गांव की बुढ़िया दाई का काम करती है। इस स्थिति का स्वांग निकाला गया। एक पुरुष ने पट्टू पहना है गर्भवती स्त्री का रूप धारण करके खलिहान में प्रवेश किया है। पेट उभरा है तथा दर्द और पीड़ा से कराह रही है। पतिदेव सेवा-शुश्रूषा कर रहे हैं। दोनों में तकरार हो जाता है। इस तकरार में न जाने क्या-क्या अश्लील बातें भी होती हैं। आखिर यह मुसीबत ही मोल क्यों ली। विना बीमारी के बीमारी। खूब रो-पीट होती है। पति को विवश होकर गांव की दाई बुलानी पड़ती है। बूढ़ी दाई कई तरह की कसरतें कराती है। हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति भी उन कष्टों को कहां सह सकता है। परंतु दाई तो दाई है। हर तरह का खेल कराती है—डंड-बैठक, भाग-दौड़, तेल-मालिश सब प्रदर्शन कराती है। जब कुछ नहीं होता तो दरांती लेकर पेट चाक करती है। देखा तो पट्टू के बीच कुत्ते का बच्चा डाल रखा है।

स्कूल का अध्यापक

गांव में नये अध्यापकजी आए हैं। खूब डींग मारते हैं कि उन्हें साधारण पढ़ाई-लिखाई के अतिरिक्त सब मंत्र, तंत्र, जंत्र आते हैं। राक्षकों को बांध सकता है। उलटे-सीधे मंत्र पढ़ता है। गांव वाले बड़े प्रभावित हो जाते हैं। रात को अध्यापक जी खलिहान में सो गए हैं। तभी एक सफेद भूत ने प्रवेश किया। लम्बा चोगा, लम्बी दाढ़ी, लम्बी-लम्बी जटाएं, हाथों में गंडासा। चारपाई हिलती है। अध्यापक जी हड़बड़ा कर उठते हैं। भूत को देखकर साहस बटोरते हैं। मंत्रों की बौछार करते हैं। परंतु भूत है कि आगे ही बढ़ता जाता है। मंत्रों का उस पर कोई असर नहीं होता। इस अवसर पर अध्यापक महोदय जो मंत्र पढ़ते हैं वह साधारण व्यक्ति का काम नहीं। यद्यपि उनका कोई अर्थ नहीं है, कोई क्रम नहीं है, कोई भाषा नहीं है, परंतु जिस शैली में मंत्र जपता है वह सबको प्रभावित करता है। उतना ही भयानक भूत है। आगे ही बढ़ता जाता है और अन्ततः अध्यापक जी को कपड़े, बिस्तर, किताबें सब कुछ फेंक कर भागना पड़ता है।

बन्दोबस्त अधिकारी

दो व्यक्ति आगे-पीछे कंधों पर दो मूसल थामे हुए हैं उनकी पीठ में किलटे हैं। मूसलों के ऊपर उलटे-सीधे कोट-पैंट-हैट पहने साहब सवार हैं। उनके आगे एक व्यक्ति झाड़ू लिए रास्ता साफ करता आ रहा है। पीछे एक व्यक्ति झाड़ियों का बना चंवर साहब के सिर पर फहराता चला आ रहा है। खलिहान में पहुंचकर एक किलटे को उलटा कर उसकी कुर्सी बनाई गई। साहब उलटे-किलटे की कुर्सी पर बैठ गए। सामने दूसरे किलटे पर लकड़ी का पटड़ा रखा गया

यह मेज़ बन गई। उसके ऊपर कुछ कागज़ कुछ चिथड़े धर दिए गए। गड़बे का दवात है। उसमें बड़ी मोटी लकड़ी की कलम है। सामने पटवारी खड़ा है और लोग बैठे हैं। साहब ने गिरदावरी की पड़ताल शुरू की है। परंतु उन्हें स्थानीय अनाज का ज्ञान नहीं है। पूछता है 'फलां खेत में क्या बोया है ?' लोग कहते हैं 'जौं'। वह सुनता है 'जूं' और गलत रिकार्डिंग पाकर काट देता है। इसी तरह 'गेहूं' को 'घिऊ' (घू), 'मक्की' को 'मक्खी', 'कोदा' को 'खोता', 'माश' को 'मास', 'मूंगी' को 'गूंगी', 'भांग' को 'मांग' आदि सुनता और समझता है तथा इस तरह पटवारी के गिरदावरी-इन्दराज को सब गलत पाकर उसे मौके पर बरखास्त कर देता है। अब चूंकि पटवारी नौकरी से निकाला जा चुका है, इसलिए साहब की सवारी को उठाने का कोई प्रबन्ध नहीं होता। साहब किसी तरह एक आदमी को इसके लिए राज़ी करता है। परंतु मूसल पर उठाने के लिए तो दो आदमी चाहिए। इसलिए अकेला आदमी कुर्सी बनाए गए किलटे को सीधा करता है। साहब को किलटे में डालता है और किलटा पीठ पर बांधकर ले जाता है।

इस प्रकार स्वांगों की कोई सीमा और समय निर्धारित नहीं है। आम मेलों, त्योहारों, शादियों आदि के अवसर पर जब देखा, नाचते हुए दर्शक ऊब रहे हैं तो कोई स्वांग प्रस्तुत करते हैं। इन स्वांगों में प्रायः नकल ही रहती है। लोग एक-दूसरे का स्वांग निकालते हैं। जिसको मौके पर जो विषय सूझा उसी पर स्वांग निकालता है। मेलों-त्योहारों में नाचने वालों में से या दर्शकों में से कोई ज़ोर की चीख-पुकार करता है। नृत्य बंद हो जाता है। वाद्य-यंत्र बजने बंद होते हैं और एक व्यक्ति अकेला ही अपनी जबान बिगाड़कर कोई स्वांग छेड़ देता है। तभी दूसरा सिर पर पल्लू डालकर उसके साथ शामिल हो जाता है; और बिना किसी तैयारी के स्वांग आरम्भ करते हैं, जिस ओर दौर गया, सो गया। एक स्वांग समाप्त हुआ नहीं कि स्वांग करने वाला नया गीत आरम्भ करके फिर नृत्य शुरू करता है। हाज़िर-जवाबी, वाक्पटुता और व्यंग्योक्ति ही स्वांग की जान है तथा जो लोग विनोदी और मज़ाकिया होते हैं वे बिना तैयारी के तुरंत सुन्दर स्वांग प्रस्तुत करते हैं।

मखौटा नाट्य

कुल्लू के लोक-नाट्य में मखौटा का प्रयोग दो प्रकार का देखने को मिलता है। पहली स्थिति में पात्र मुंह पर मुखौटा पहन लेते हैं और एक-दूसरे से या दर्शकों से वार्तालाप करते हैं। यहां मुखौटा का प्रयोग विकल्पित है। वही वार्ता-अभिनय वे बिना मुखौटा के भी कर सकते हैं और प्रायः देखने में आया है कि एक ही दृश्य एक बार या एक स्थान पर मुखौटा के साथ किया जाता है और कहीं दूसरी बार मुंह पर कुछ और पर्दा डालकर किया गया है। हरण के स्वांग-अभिनय, गनेड़ और सामान्य स्वांग नाट्यों में मुखौटों का प्रायः ऐसा प्रयोग देखने में आता है। यहां इसका यह भी प्रयोजन रहा है कि जहां खुले चेहरे में अश्लील गालियां या अश्लील वार्तालाप में प्रायः संकोच होता है वहां पात्र विशेष मुंह पर मुखौटा पहन कर बेधड़क एवं निस्संकोच अश्लील वाक्य, पद और गालियां बोल लेता है। यहां मुखौटा पर्दा का काम करता है और अपने-आप में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऐसी स्थिति में मुखौटे कागज़ों, गत्तों, मज़बूत चिथड़ों के तो बनते ही हैं परंतु सर्वाधिक 'तुंबड़ों' के बनते हैं। तुंबड़ा घिया या कद्दू की एक किस्म है परंतु ये सख्त कड़वे होते हैं और सब्ज़ी आदि के काम नहीं आते। उन्हें लोग विशेष रूप से मुखौटों के लिए या पानी लाने या रखने के लिए पात्र हेतु ही उगाते थे। पकने पर उनका छिलका सख्त हो जाता है। अंदर

से बीज आदि निकाल कर उन्हें पुन: सुखा लिया जाता है और वह छिलका इतना सख्त होता है कि यदि उसे नमी द्वारा लगने वाले कीट से बचा दिया जाए तो कभी टूटता-फूटता नहीं है । कुछ घरों में सैंकड़ों वर्ष पुराने तुंबड़े के मुखौटे अब भी सुरक्षित हैं । उनके ऊपर बकरी की जटाओं की दाढ़ी-मूछों को केवल कई बार दोबारा लगाना पड़ता है। जिन लोगों का स्वांग रचाने का काम पैत्रिक रहा है (व्यवसाय के रूप में नहीं, शौकिया) उनके पास तुंबड़ा के पुराने मुखौटे अब भी सुरक्षित हैं ।

परंतु कुलूई क्षेत्र में मुखौटा-नाट्य का एक दूसरा रूप है जो पहले से अधिक महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट है । यहां मुखौटों का प्रयोग अनिवार्य है । इनका प्रयोग और प्रदर्शन परम्परा से मर्यादा के साथ जुड़ा है तथा इन लोक-नाट्यों में ऐसे मुखौटों का प्रयोग होता है जो सैंकड़ों नहीं हज़ारों वर्ष पुराने हैं ऐसी लोगों की धारणा और विश्वास है। वर्ष में केवल फागुन मास ही ऐसे मुखौटा नाट्यों का महीना है। कुलूई समाज में फागुन मास दो बातों के लिए प्रसिद्ध है—देवताओं की भार्था— बर्शोहा के लिए और मुखौटा नाट्य के लिए । और ये दोनों परम्पराएं एक-दूसरे के साथ अटूट रूप से जुड़ी हुई हैं। वर्ष में केवल एक बार फागुन मास में एक विशेष त्यौहार 'फागली' के अवसर पर सभी देवता अपना इतिहास सुनाते हैं—मेरा जन्म कहां और कैसे हुआ । बाहर से आने की स्थिति में मैं यहां कैसे पहुंचा, कौन मार्ग अपनाया, मार्ग में क्या घटनाएं घटीं । यहां आकर क्या परिस्थितियाँ देखने को मिलीं । किस स्थान पर किस दानव, दूत, भूत, राक्षस, पिशाच आदि दुरात्मा से संघर्ष हुआ । उनका कैसे दमन किया और किस कठिनाई से सुख, शांति और समृद्धि स्थापित की गई। यही 'भार्था' है। आने वाले वर्ष में क्या होना— वर्षा, बाढ़, सूखा, बीमारी-रोग, अग्नि-कांड, अन्न-धन्न की कमी-बेशी आदि की भविष्यवाणी 'बर्शोहा' है।

भार्था (वार्त्ता) में जिन स्थानीय घटनाओं का उल्लेख ज़बानी हुआ है उनका नाटकीय प्रदर्शन मुखौटा नाट्य द्वारा प्रस्तुत होता है। सारे कुल्लू ज़िला में स्थान-स्थान पर इन नाट्यों का आयोजन होता है। कुल्लू क्षेत्र में मुखौटा को 'खेपरा' कहते हैं। जब ये हरण या स्वांग नाट्यों में प्रयुक्त होते हैं तो उन्हें 'माला-रा-खेपरा' कहते हैं । सिराज क्षेत्र में इन्हें 'मण्डियाला' कहते हैं । हर मंदिर में सदियों पुराने खेपरे सुरक्षित हैं। ये अखरोट की लकड़ी या खरशू वृक्ष की लकड़ी या मिट्टी के बने होते हैं। अखरोट से भी खरशू की लकड़ी अधिक मज़बूत और देर तक रहने वाली होती है । 'खरशू' को लोग 'पत्थर बूटा' अर्थात् 'पत्थर का वृक्ष' कहते हैं। विश्वास है कि इसकी लकड़ी पत्थर की तरह हमेशा सुरक्षित रहती है यदि केवल जलाया न जाए। मुखौटों में चित्रकारी की होती है और प्रत्येक मुखौटा प्राचीन काष्ठ-कला और चित्रकला का उत्कृष्ट उदाहरण है ।

हर एक मुखौटा का स्वरूप भिन्न होता है । किसी का मुंह शेर, बाघ, चीता जैसा होता है। किसी की आंखें, कान, नाक मोटे और लम्बे होते हैं। परंतु उनकी भयानकता उनकी विशिष्टता है। यदि हंसता हुआ भी दिखाया गया है तो भी भय और डर हमेशा छाया रहता है। प्राय: उसका वही स्वरूप होता है जो उस दूत, भूत, राक्षस का रहा होगा जिसे देवता ने मारा है। अभिनय भी उसी अनुकूल होता है—लंगड़ा हो तो पात्र लंगड़ाता हुआ चलता है, यदि टूंडा (हाथ-कटा) है तो एक या दोनों हाथ बंधे होते हैं।

स्वरूप और अभिनय की दृष्टि से स्थानीय-भेद होने के अतिरिक्त प्रदर्शन में लगभग साम्यता दिखाई देती है। मुखौटा नाट्य की एक और विशेषता है। मुखौटाधारी कोई वार्तालाप

या बात-चीत नहीं करते। वे केवल चीख, पुकार, सीटी बजाकर शोर ही मचाते हैं, परन्तु अभिनय उनका आकर्षक होता है। उछल-कूद तो होती ही है साथ में हर स्थान के दूत, भूत, राक्षस की विशिष्ट हरकत भी रहती है। वार्तालाप और गाना आदि का काम अन्य पात्र करते हैं जो एक किनारे पर बैठे होते हैं। कुल्लू में मलाणा, हलाण, चजोगी, सोयल, रूमसू, दुआड़ा, जाणा, बड़ाग्रां, फोजल, शलीण, अलेऊ आदि गांवों के मुखौटा-नाट्य बड़े प्रसिद्ध हैं।

हर स्थान पर और हर समय मुखौटाधारी पात्रों का चयन पहले ही होता है। ये हृष्ट-पुष्ट और जवान होने चाहिए ताकि वे खूब उछल-कूद, दौड़-धूप वाला अभिनय कुशलता से कर सकें। वे मुंह पर खेपरे पहनते हैं। शरीर में घास-फूस का लिबास पहनते हैं। घास में प्रमुखतः 'रावल' नाम का विशेष घास होता है। रावल के मोटे और लम्बे पत्ते लिवास का रूप सहज ही धारण कर लेते हैं। रावल घास के लिबास और लकड़ी के मखौटों से उनका रूप बड़ा भयानक लगता है और वे राक्षस से कम डरावने नहीं लगते। ढोल, नगारा, रणसिंघा, करनाल आदि वाद्य-यंत्रों के संगीत में वे नाचने लगते हैं, परंतु उनका नाच साधारण नहीं होता। वे उलटे-सीधे उछल-कूद करते हैं। छलांगें मारते हैं। अपने में एक-दूसरे के ऊपर सवारी करते हैं। कभी मल्ल-युद्ध का प्रदर्शन करते हैं।

उनके हाथों में बड़े-बड़े डंडे या कुल्हाड़ी आदि हथियार होते हैं। हर एक के पास एक गठड़ी होती है। गठड़ी में आभूषण और सुन्दर कपड़े होते हैं जिनमें पट्टू, कमीज, सलवार, पाजामे, कोट आदि होते हैं। पुरुष और स्त्री दोनों के वस्त्र उन गठड़ियों में रखे जाते हैं। वाद्य-यंत्रों के संगीत में उछल-कूद, कुश्ती, मल्लयुद्ध, करने के बाद वे दर्शकों में प्रवेश करते हैं। दर्शक चारों ओर कुछ दूर ऊंची-नीची धरती पर बैठे उनका तमाशा देख रहे होते हैं। ज्यों ही वे दर्शकों के बीच प्रवेश करते हैं लोगों में हल-चल मच जाती है। दर्शकों में किसी स्थान पर पुरुषों को और किसी स्थान पर स्त्रियों को ढूंढ़ते हैं। जहां देवता विशेष ने जौछणी (सं० यक्षणी) को मारा हो, वहां वह केवल नौजवान लड़कों या मर्दों को ढूंढ़ती है। लोक-विश्वास है कि जौछणी केवल मर्दों पर आसक्त होती है स्त्रियों को कुछ नहीं कहती। जहां देवता विशेष ने भूत-प्रेत को मारा हो वहां वे लड़की या स्त्री की तलाश करते हैं। अपने लक्ष्य को ढूंढ़कर वे उसे दर्शकों में से उठा कर रंग-मंच पर लाते हैं और अपनी पंक्ति में खड़ा कराते हैं। तव गठड़ी को खोलकर उसके वस्त्राभूषण एक-एक करके उसे दिखाते हैं। उसे वह वस्त्राभूषण देने का अभिनय करते हैं। उन्हें उसके शरीर में बांधना और पहनाना शुरू करते हैं। उसे अपना पति, पत्नी या साथी बनाने का अभिनय करते हैं। वह लड़का या लड़की, मर्द या स्त्री भी अपने सामर्थ्य के अनुसार उनके अभि-नय का उत्तर देते हैं।

ऐसे मुखौटाधारियों में अनेक वार सचमुच वह प्रेतात्मा प्रवेश करती है जिसका मुखौटा उस मखौटाधारी ने पहन रखा हो। इसलिए देवता का गूर हर समय तैयार रहता है और यदि कोई अधिक उछल-कूद करे तो उसे शांत कराता है। चजोगी के मुखौटा नाट्य में चार मुखौटा-धारियों के आगे एक धुरी होता है जो साधारण चोला-टोपा पहनता है। उसके एक हाथ में लम्बा डंडा होता है जिसे सभी मुखौटाधारी एक के पीछे दूसरा, पकड़े रखते हैं और सारे खेल में उस डंडे को नहीं छोड़ते। धुरी के दूसरे हाथ में कुल्हाड़ी के आकार का देवता का एक शस्त्र होता है जिसे वह मुखौटाधारियों के सिर पर वार-वार फेरता रहता है ताकि प्रेतात्मा सचमुच उनमें प्रवेश न करे। मलाणा में मुखौटाधारियों को यह खेल वर्फ़ के ऊपर करना होता है। वे पहले ही अपने पांव

में देसी घी और मिर्च का लेप करते हैं ताकि बर्फ का असर कम हो। उनके हाथ में तौबटी (कुल्हाड़ी के आकार का शस्त्र) होती है। इसे भी वे समय-समय पर एक-दूसरे के सिर पर घुमाते रहते हैं।

मुखौटा नाट्य की यह भी विशिष्टता है कि भले ही मुखौटा पहने हुए पात्र बोलते नहीं हैं परंतु उनका मूक अभिनय इतना कुशल होता है कि अपने अभिनय से वे हर बात स्पष्ट अभिव्यक्त करते हैं। उनकी चीख-पुकार इतनी तेज़ होती है कि सारा वातावरण गूंज उठता है वे अनेक तरह की आवाज़ें निकालते हैं और उनकी आवाज़ों में क्रूरता, भय, आक्रोश, क्रोध साफ-साफ अभिव्यक्त होता है। उछल-कूद में एकदम स्तब्धता लाकर वे बाहरी प्रभाव का रूप दर्शाते हैं। अपनी चाल में विभिन्न परिवर्तन लाकर अपने मन्तव्य को स्पष्ट व्यक्त करते हैं। यह देखने की बात है कि जहां भाषा के शब्दों के अभाव में भावों की अभिव्यक्ति अवरुद्ध हो जाती है वहां मुखौटाधारी अभिनेता अपनी शारीरिक अभिव्यंजना से भावनाओं का सजीव चित्रण प्रस्तुत करता है। गायक वाद्य के सहयोग में किनारे पर बैठे गीतों के बोल बोलते हैं और मुखौटाधारी उन गीतों के शब्दों और भावों के अनुसार सुन्दर अभिनय प्रस्तुत करते हैं।

गत पृष्ठों में कुल्लू के लोक-नाट्यों पर परिचयात्मक विवरण दिया गया है। यह अपने-आप में पूर्ण नहीं है। लोक-नाट्यों का वर्गीकरण केवल अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से किया गया है। वर्गीकरण की और दिशाएं भी हो सकती हैं। प्रत्येक वर्ग के अन्तर्गत कुछेक प्रमुख नाट्यों का उदाहरण-स्वरूप उल्लेख किया गया है। सभी नाट्यों को इस छोटे-से लेख की परिधि में लाना कठिन है। इन नाट्यों से यहां के जनजीवन की झलक तो मिलती ही है, ये यहां की सांस्कृतिक चेतना के भी द्योतक हैं। कुल्लू देव-भूमि के नाम से प्रसिद्ध है। यहां का सारा जन-जीवन देव-प्रथा के गिर्द घूमता है। इसलिए नाट्य के क्षेत्र में देव-भावना का प्रभुत्व रहा है। परंतु देवता का प्रभाव होते हुए भी यह तो निश्चित है कि कुलूई नाट्य ग्राम्य-धर्म की उपज है और वह इस क्षेत्र की जनता की सहजवृत्ति से सम्बन्धित है। इनमें ग्राम्य-धर्म की अनुकृतियां प्रदर्शित होती हैं।

आज लोक-नाट्य संक्रमण-काल से गुज़र रहे हैं। आकाशवाणी और दूर-दर्शन अब गांव-गांव में नहीं घर-घर में पहुंच चुके हैं। इनकी बदौलत लोगों को वर्ष-भर हर तरह के नाटक और नाट्य मनोरंजन घर बैठे मिल जाते हैं। परंतु एलैक्ट्रोनिक्स की यह दौलत लोक-कला-सम्पदा को हड़पती जा रही है। वैज्ञानिक चमत्कार, वर्तमान समाज का भौतिकवाद, नव उद्योग-प्रभावित सभ्यता में लोक-कलाओं की सांस्कृतिक विधियां तीव्रगति से लुप्त हो रही हैं। उधर एक सुधार-संशोधन की लहर चल पड़ी है। इस सुधार की कोई निर्दिष्ट दिशा नहीं है। लोक-नाट्य और लोक-नृत्य, मंच की वस्तुएं नहीं हैं। ये खुले प्रांगण की कलाएं हैं। जब इन्हें प्रयोग की वस्तु बनाकर मंच की प्रयोगशाला पर लाया जाता है तो इनकी परम्परागत गरिमा स्वतः नष्ट हो जाती है। बेहतर है कि इन लोक-कलाओं को लोक में ही पनपने दिया जाए।

[गांव शांघन, डाक घर भलियाणी, जिला कुल्लू, हि० प्र०]

आयोजन

मंडी में कहानी संवाद

□ नरेश पंडित

9 जून, 1990 शुक्रवार के दिन हिमाचल प्रदेश प्रगतिशील लेखक संघ के तत्वावधान में कहानी संवाद 1990 का आयोजन मंडी में किया गया। बिना किसी औपचारिकता के सर्वप्रथम, सर्वश्री देश निर्मोही, पन्नालाल अग्रवाल व कृष्ण कुमार 'नूतन' को अध्यक्ष मण्डल के लिए चुना गया।

कहानी संवाद के प्रथम चरण में तीन पत्र सर्वश्री केशवचन्द्र, नागेश भारद्वाज व डॉ० मस्तमन सैनी द्वारा पढ़े गए। हर पत्र पढ़े जाने के बाद उस पर खुलकर बातचीत हुई। केशवचन्द्र के पत्र का शीर्षक था—'कहानी : प्रगतिशील कहानी।' पत्र में लेखक ने कहानी के जन्म, उसके ऐतिहासिक क्रम में विकास, स्वरूप व कहानी में प्रगतिशीलता के तत्वों के बारे में चर्चा की। लेखक के पत्र में कहानी की प्रगतिशीलता के बारे में कहा गया कि मूलतः कहानी प्रगतिशील ही होती है परन्तु उसके कथ्य व शिल्प में जीवन की स्थितियों की द्वन्द्वात्मकता स्पष्ट होनी चाहिए—सत्य का तथ्यमूलक विश्लेषण होना चाहिये। उसमें समाज की विसंगति को उघाड़कर सामने लाने व स्थिर या रूढ़ सामाजिक स्थिति से आगे निकलने का प्रेरणासूत्र होना चाहिए। द्वन्द्वात्मकता की पहचान भर से काम नहीं चलता, उससे रूपांतरण की प्रक्रिया का भी आभास मिलना चाहिए।

इस पत्र पर राजकुमार राकेश, हेमकांत कात्यायन, दीनू कश्यप व डॉ० चेतन शर्मा ने अपने विचार प्रस्तुत किए। लगभग चारों वक्ताओं ने पत्र में कहानी के बारे में प्रस्तुत विचारों से सहमति व्यक्त की परन्तु यह राय दी कि यदि आलेख में कुछ प्रतिनिधि कहानियों की चर्चा की जाती तो बहुत अच्छा होता।

नागेश भारद्वाज ने 'पहचान की तलाश में हिमाचली हिन्दी कहानी' विषय पर पत्र पढ़ा। नागेश ने यह स्पष्ट किया कि वैसे तो हिमाचली हिन्दी कहानी—देश की हिन्दी कहानी की ही एक प्रशाखा है परन्तु अभी तक इसकी राष्ट्रीय धारा में समरूपता नहीं हो पाई है।

इस पत्र पर चर्चा के लिये विजय विशाल, दीनू कश्यप, दिनेश धर्मपाल आदि आये। आमतौर पर सहमति के साथ दिनेश धर्मपाल ने कहा कि कहानी किसी वाद विशेष की प्रवक्ता

हो ही, यह जरूरी नहीं।

डा० मस्तमन सैनी के पत्र 'समकालीन हिन्दी कहानी : एक परिपेक्ष्य' में हिन्दी कहानी के उद्भव व विकास पर व्यापक प्रकाश डाला गया। कहानी को लेकर संवाद के लिए इसमें पर्याप्त सामग्री थी। इस पत्र पर बहस में राजकुमार राकेश, विजय विशाल आदि ने हिस्सा लिया। वक्ताओं का कहना था कि पत्र निश्चय ही अपेक्षित सूचनाएं दे देता है परन्तु-पुस्तक के पाठ्यक्रम-सा है।

इस सत्र का मंच संचालन कर रहे थे प्रकाशपंत व नागेश भारद्वाज। सत्र का समापन करते हुए देश निर्मोही ने कहा कि पत्रों में कहानी को लेकर काफी उपयोगी सामग्री है। इस प्रकार का कहानी-संवाद निरंतरता के साथ जारी रहना चाहिए।

'हिमाचल की प्रगतिशील कहानियां' शीर्षक से प्रकाशित व नरेश पंडित द्वारा सम्पादित पुस्तक का विमोचन भी कृष्ण कुमार नूतन द्वारा किया गया। प्रस्तुत पुस्तक में हिमाचल के सोलह कहानीकारों की एक-एक कहानी सम्मिलित की गई है।

रात के समय दूसरे सत्र में कहानी व कविता पाठ हुआ। नरेश पंडित ने अपनी कहानी 'बूढ़ा पीपल' व राजकुमार राकेश ने 'झिंगुर' शीर्षक कहानी पढ़ी। इन कहानियों पर देश निर्मोही, दीनू कश्यप, नागेश भारद्वाज व डा० चेतन शर्मा ने अपने विचार प्रस्तुत किये। दोनों ही कहानियों को प्रतीकात्मक बताया गया। इस सत्र की अध्यक्षता योगेश्वर शर्मा ने की।

कहानी पाठ के बाद रविसिंह राणा 'शाहीन' ने अपनी गज़ल सुनाई व दींनू कश्यप ने अपनी कविता प्रस्तुत की। कविता व ग़ज़ल पर भी उपस्थित कवियों व कहानी लेखकों ने अपने विचार रखे।

अंत में हिमाचल प्रगतिशील लेखक संघ के महासचिव नरेश पंडित ने बताया कि 1990 के कहानी संवाद के समान ही हर वर्ष यह आयोजन जारी रखा जायेगा। प्रगतिशील लेखक संघ हर वर्ष एक या दूसरी विधा को लेकर पुस्तक प्रकाशित करवाता रहेगा। कहानी संवाद के आयोजन के समय ही संघ द्वारा आरम्भ किया गया 5000/- रुपये का 'जनशक्ति पुरस्कार' भी दिया जाता रहेगा।

संस्कृत दिवस समारोह

प्रदेश के भाषा एवं संस्कृति विभाग द्वारा प्रति वर्ष श्रावणी पूर्णिमा के अवसर पर राज्य स्तरीय संस्कृत दिवस समारोह का आयोजन विशेष उत्साह से किया जाता है। जिला स्तरीय आयोजन, जिला भाषा अधिकारियों द्वारा कराये जाते हैं।

6 अगस्त 1990 को राज्य स्तरीय संस्कृत दिवस समारोह श्रीचामुण्डा मंदिर (जिला कांगड़ा) में सम्पन्न हुआ। इस आयोजन के प्रारम्भ में आचार्य हरिदत्त शर्मा ने वेद मंत्रों का विधिवत पाठ किया। इसका उद्‌घाटन करते हुए प्रदेश के स्वास्थ्य मंत्री श्री विद्यासागर ने कहा कि संस्कृत एक समृद्ध भाषा है और इसमें भारतीय ज्ञान की विभिन्न धाराएं समाहित हैं। निदेशक श्री ललित ने मुख्य अतिथि व संस्कृत विद्वानों का स्वागत करते हुए कहा कि भारत जैसे विविध देश को एकता के सूत्र में बांधने की दिशा में संस्कृत भाषा और साहित्य में बहुत शक्ति है।

प्रथम सत्र में डा० वेदप्रकाश अग्नि ने 'संस्कृत साहित्य और मानवाधिकार' विषय पर अपना पत्र प्रस्तुत किया। उन्होंने वैदिक साहित्य से लेकर लौकिक संस्कृत साहित्य तक में मानवाधिकार की चेतना को लेकर गंभीर विश्लेषण प्रस्तुत किया। इस विषय पर श्री परमानन्द शास्त्री, डॉ० सतीश कुमार, डॉ० राममूर्ति वासुदेव प्रशांत, श्री दुर्गादत्त शास्त्री, श्री गोविन्दराम शास्त्री, डॉ० गंगादत्त तथा श्री विनोद सांख्यान ने भी अपने विचार व्यक्त किए। वयोवृद्ध संस्कृत विद्वान आचार्य शालिग्राम शर्मा ने गोष्ठी की अध्यक्षता की। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में मानवाधिकारों के प्रति भारतीय दृष्टिकोण पर विस्तार से प्रकाश डाला। उल्लेखनीय है कि गत वर्ष शिमला में 'वत्सल निधि' द्वारा आयोजित लेखक शिविर में साहित्य, संस्कृति और मानवाधिकार, विषय पर चार दिनों तक व्यापक चर्चा हुई थी। इस शिविर में डा० वेद प्रकाश अग्नि तथा आचार्य शालिग्राम ने भी भाग लिया था। संस्कृत साहित्य के विशेष संदर्भ में यह विषय इसी संवाद को आगे बढ़ाने का प्रयास रहा।

सायं कवि सम्मेलन में संस्कृत कवियों ने कविता पाठ किया। उल्लेखनीय है कि हिमाचल प्रदेश में अभी ऐसे संस्कृत विद्वान हैं जो संस्कृत भाषा में कविता रचना करते हैं और धारा-प्रवाह बोल सकते हैं। कविता पाठ की अध्यक्षता प्रसिद्ध संस्कृत कवि श्री दुर्गादत शात्री ने की। श्री नरोत्तमदत्त शास्त्री, प्रो० खुशीराम शर्मा, डॉ० गंगादत्त, डा० हरिदत्त, आचार्य हरिदत्त शर्मा, श्री नागदत्त ढीमरी तथा शशिकांत शास्त्री आदि कवियों ने संस्कृत में कविता पाठ किया।

कविता पाठ के बाद श्री सतीश कुमार तथा उनके कलाकार साथियों ने शास्त्रीय संगीत पर आधारित कार्यक्रम प्रस्तुत किया।

—**वासुदेव शर्मा**

'शेषकथा' पर विचार

पिछले दिनों 'विमर्श' के तत्वाधान में सुप्रसिद्ध कवि समीक्षक, ललित शुक्ल के उपन्यास 'शेषकथा' पर संगोष्ठी आयोजित की गई। अवध अंचल के ग्राम्य परिवेश पर आधारित 'शेष-कथा' को लेकर सम्पन्न समग्र बातचीत में लोकपरिवेश की यथार्थता और आंचलिकता के दायरे में उपन्यास की सार्थकता पर प्रकाश डाला गया। अध्यक्ष पद से बोलते हुए डा० रामदरश मिश्र ने कहा कि किसी भी रचना का अर्थ मात्र यथातथ्यता की प्रस्तुति नहीं है, बल्कि उसमें रचनात्मक मूल्यों की प्रस्तुति अपना महत्व रखती है। उन्होंने कहा कि अक्सर कवि कविता में तो जलेबी बनाते ही हैं, कथा और उपन्यास में भी उनका संयोजन स्पष्ट नहीं होता। इस अर्थ में 'शेष कथा' प्रेमचन्द की परम्परा के निकट का, किन्तु नई दृष्टि से ग्राम-चेतना को रेखांकित करने वाला एक पठनीय उपन्यास है।

अपने आलेख में लोक संस्कृति के विधायक तत्वों का उल्लेख करते हुए डा० सुलेखचंद्र शर्मा ने कहा कि यह प्रगीतात्मकता की ज़मीन पर रची हुई रम्य रचना है। डा० रूपसिंह चंदेल ने अपने परिचय में 'शेषकथा' की उन बारीकियों की चर्चा की, जहां गांव अपने पूरे प्रपंचतन्त्र में मौजूद है। रणवीर दिनेश ने अपने आलेख में आज लिखे जा रहे अनुपन्यासों के संदर्भ में 'शेष-कथा' को एक यथार्थवादी आकलन कहते हुए उपन्यास के चरित्रविधान में विकास की संभाव-नाओं पर बल दिया। प्रताप सहगल ने उपन्यास में आंचलिकता की छौंक की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा कि इसमें दर्शन नहीं, जीवन को पकड़ने की कोशिश की गई है। डा० नरेन्द्र मोहन ने कहा कि कथा में स्थितियों को आत्मीय शैली में प्रस्तुत किया गया है।

श्रवणकुमार ने कहा कि 'शेष कथा' में लेखक ने ग्राम्य परिवेश को गहराई से चित्रित किया है। बलदेव वंशी ने कहा कि उपन्यास में सूचनात्मक यथार्थ का उपयोग किया जाता तो यह और अधिक सफल बन सकता था। डा० रमेशचन्द्र मिश्र ने इसे विरोध के बीच सामंजस्य की स्थितियों का सफल चित्रण बताया। ओम निश्चल का मत था कि 'शेषकथा' में गांव में व्याप्त खंड-खंड पाखंड का बेलाग चित्रण सम्भव हुआ है। केवल सूद का कहना था कि लेखक ने धर्म की डोर के सहारे ग्राम्य जीवन के भीतरी सत्य को तथ्यतः प्रस्तुत किया है। डा० विद्याशंकर सिंह ने 'शेषकथा' में चरित्रों की मानवीय कमजोरियों के यथार्थ चित्रण को सराहा। डा० प्रतिभा पाठक का मानना था कि उपन्यास के मुख्य पात्र, स्वामी स्वरूपानन्द की अपेक्षा मुख्य स्त्री पात्र, गंगा के चरित्र में संघर्ष और सहनशीलता अधिक मुखर हुई है। डा० वीरेन्द्रनाथ मिश्र ने कहा कि यह सवाल उठाना व्यर्थ है कि यह उपन्यास आंचलिक है या नहीं अथवा इसमें कितने बड़े अंचल की कथा है। महत्व की बात यह है कि जितना भी इस लघु उपन्यास में है, वह खालिस गांव की जमीन की कथा है। लघु उपन्यास की सार्थकता के लिए इतना ही पर्याप्त है। संगोष्ठी में डा० जे० एल० रेड्डी, रमाशंकर श्रीवास्तव, डा० श्यामबिहारी राय एवं डा० गुरुचरणसिंह आदि ने शिरकत की। सार्थक साहित्यिक परिचर्चा की दृष्टि से यह संगोष्ठी न केवल 'शेषकथा' बल्कि उसके बहाने उपन्यास विधा के कतिपय महत्वपूर्ण मुद्दों को उठाने में सफल भी रही।

—ओम निश्चल

मायो देवी मंदिर : चितकुल

सांगला तहसील के चितकुल गांव का यह मंदिर पैगोडा शैली में निर्मित है। स्लेट (पत्थर) की तीन छतों से ढका यह मंदिर अनुपम सुंदर है। निचली दो छतों में लकड़ी की नक्काशीदार झालरें चारों ओर झूल रही हैं। सर्दियों में बर्फ़ का पानी जमने से भी कुछ ऐसी ही छड़ियां-सी छतों से झूलती हैं। संभवत: वास्तुशिल्पी की प्रेरणा का स्रोत यही हो। यह कला को प्रकृति से भी सीधा जोड़ता है। मंदिर की ड्योढ़ी पर लकड़ी की नक्काशी देखते ही बनती है। ड्योढ़ी और एक आयताकार कमरे को एक ही छत से ढका गया है।

बेरिंग नाग मंदिर : सांगला

यह मंदिर सांगला नामक गांव में है। यह भी पैगोडा शैली में निर्मित है। मुख्य मंदिर का कक्ष आयताकार है और स्लेट (पत्थर) की तीन छतों से ढका है। छतें काफी ऊंची हैं और हर छत अपने नीचे की छत से छोटी है। मंदिर की ड्योढ़ी सबसे सुंदर है। इसकी दीवारों पर लड़की का काम उत्कृष्ट है। ड्योढ़ी की छत मुख्य मंदिर से जुड़ी है, लेकिन भिन्नता लिए हुए है। इसमें भी दो और छोटी छतें जुड़ी हैं।

आवरण के चित्र

मुख पृष्ठ पर युवा कलाकार हिम कुमार चटर्जी द्वारा निर्मित किन्नौर के एक गांव सुंगरा में स्थित महेश्वर मंदिर का रेखांकन है। इस मंदिर को किन्नौर के सभी मंदिरों में बड़ा माना जाता है। पूर्णतया लकड़ी से निर्मित यह मंदिर पहाड़ी स्थापत्य कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह पैगोडा शैली का मंदिर है। इस तीन मंजिला मंदिर का सबसे ऊपर वाला छत गोल है और बाकी दो छत आयताकार हैं। ये तीनों छत लकड़ी के हैं और नीचे से ऊपर तक हर छत अपने नीचे वाले छत से छोटा है। इस मंदिर का निर्माण काल तो ठीक मालूम नहीं, लेकिन यह बहुत प्राचीन भी नहीं दीखता।

दूसरे पृष्ठ पर मृकुला देवी मंदिर, उदयपुर (लाहौल) के गर्भ गृह में सज्जित एक काष्ठकृति का चित्र है। इसमें राम, सीता और हमुमान एक साथ दर्शाए गए हैं।

तीसरे पृष्ठ पर खजियार झील का मनोरम दृश्य है। खजियार चम्बा ज़िला का एक प्रमुख पर्यटन स्थल है। देवदार के घने जंगल के बीच समतल स्थान पर एक सुंदर झील है जिसमें पानी में उगने वाली घास के हरित खंड तैरते हुए टापुओं की तरह प्रतीत होते हैं। साफ मौसम में चारों ओर घिर आए देवदार के वृक्षों की छाया झील पर कुछ ऐसी पड़ती है जैसे झील में ही एक और जंगल उग आया हो। खजियार का एकांत निःसंदेह मुग्ध करता है। खजियार के लिए डलहौजी, चम्बा और धर्मशाला कहीं से भी जाया जा सकता है।

अंतिम पृष्ठ पर लाहौल के एक गांव का दृश्य है। वर्ष में लगभग पांच-छः महीनों के लिए खुलने वाले लाहौल का मौसम जुलाई-अगस्त में अपना रंग लाता है। शेष राष्ट्र बरसात में डूबा होता है तो रोहतांग के पार वसंत जैसे शरण ले लेता है। लाहौल का जन-जीवन अपना पृथक् आकर्षण रखता है। प्राचीन बौद्ध गोम्पाओं के इर्द-गिर्द आज भी शांति जैसे पसरी रहती है।

उपहार चित्र में

रागमाला चित्र-सीरीज़ का 'राग श्री' पर आधारित अठारवीं शती के प्रारंभ का चित्र है। इस चित्र में नायक एक पहाड़ी पर वृक्ष के नीचे बैठा है। वह हाथी की सूंड का स्पर्श कर रहा है और एक सेवक भी साथ खड़ा है। नीले आकाश में सफेद बादल दिखाई दे रहे हैं।

tharahkardu.in

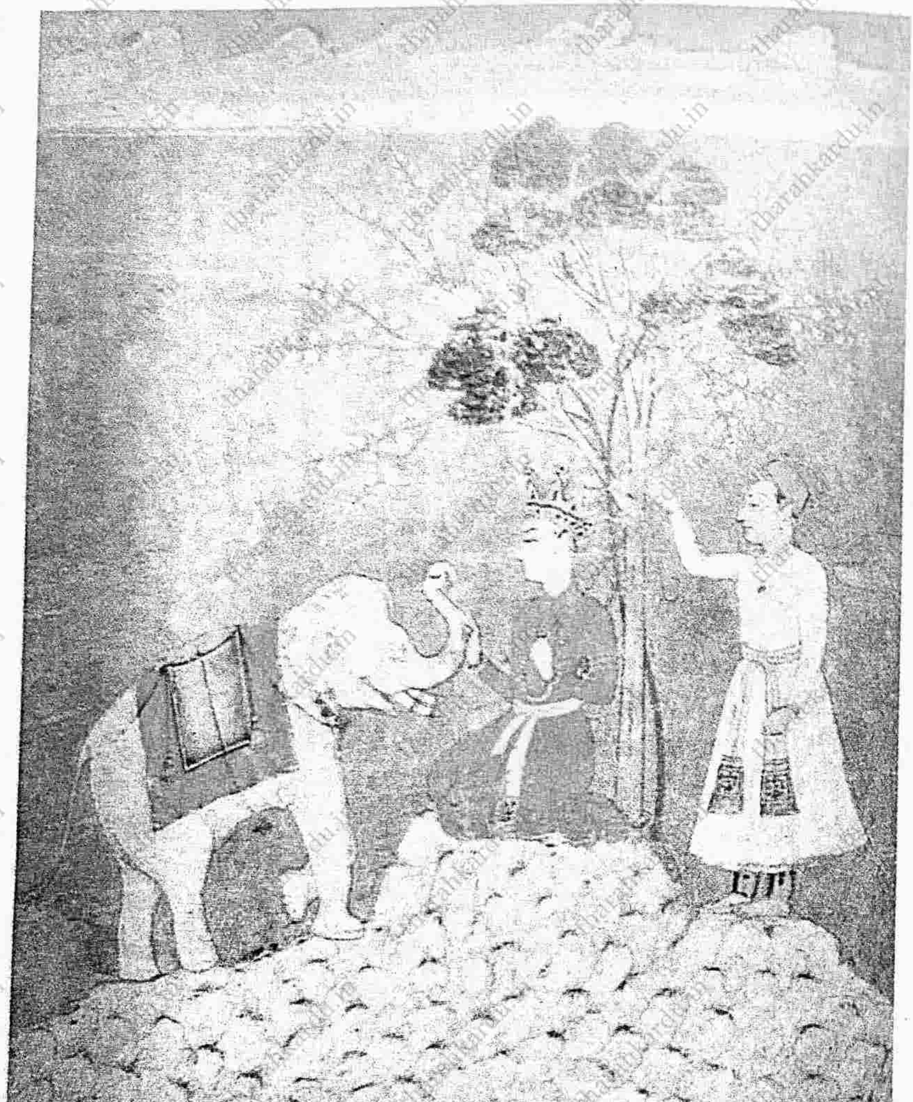

राग श्री (बिलास पुर, 18वीं शती पूर्वार्ध, रागमाला चित्र, राज्य संग्रहालय, शिमला)

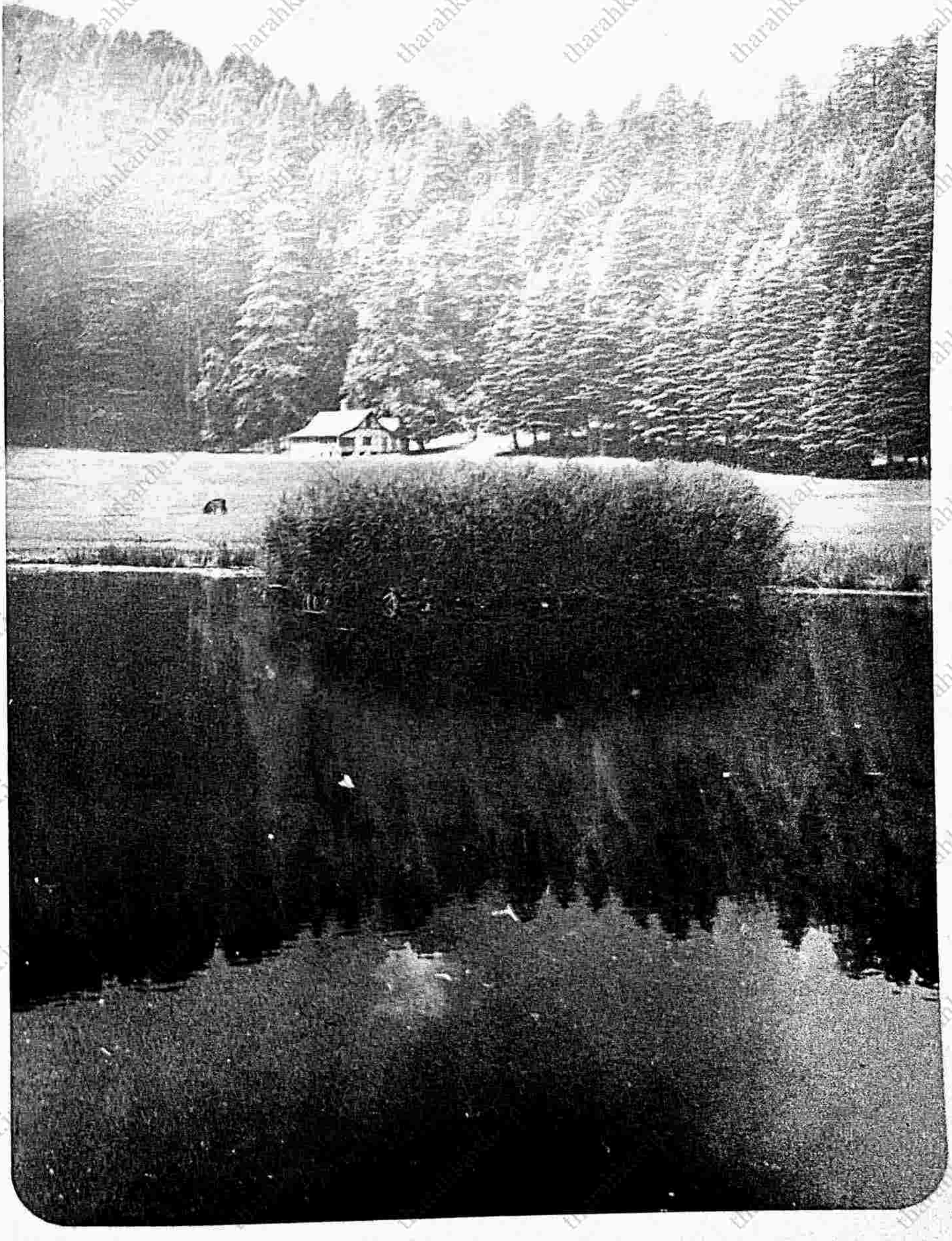

खजियार झील (जिला चम्बा) का एक दृश्य

VIPASHA—34 SEPTEMBER—OCTOBER, 1990 R.N. 42497/85 PRICE : Rs. 2/-

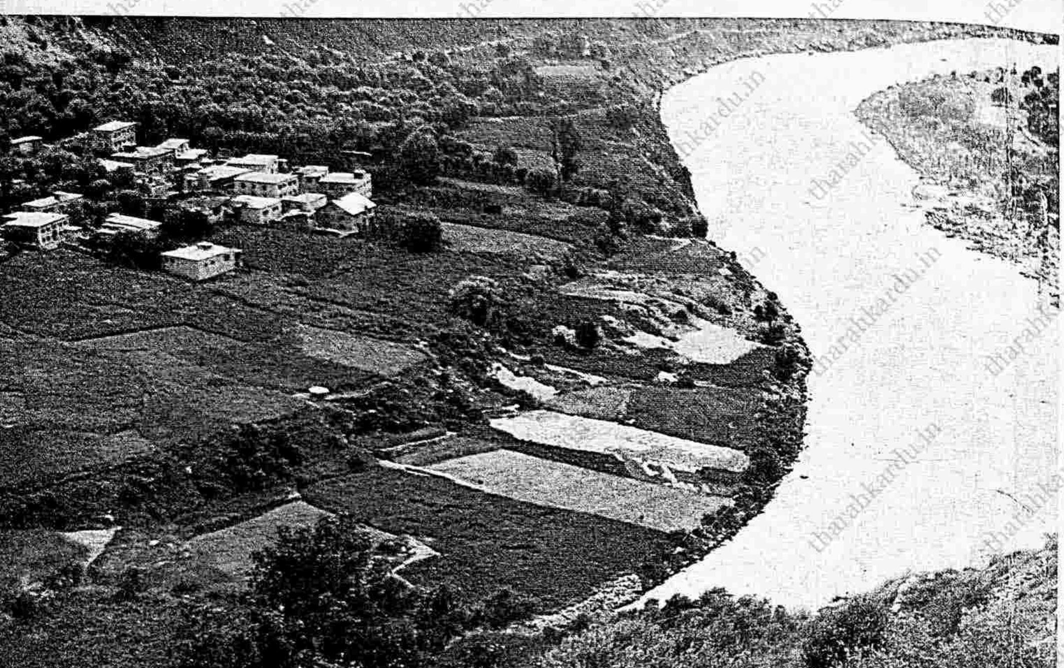

लाहौल के एक गांव का दृश्य
आवरण के सभी चित्रों की छाया : हाकम शर्मा

निदेशक, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश, शिमला-171003 द्वारा प्रकाशित तथा शांति मुद्रणालय, गली नं. 11, विश्वासनगर दिल्ली-32 द्वारा मुद्रित